की स्थापना की है, वहाँ सौ हाथ तक पुण्यमय स्थान है और ऋषियों द्वारा स्थापित लिंग स्थान पुण्य क्षेत्र है, वहाँ हजार हाथ तक स्थान पवित्र कहा गया है ।५३। देवताओं द्वारा स्थापित लिंग का प्रादुर्भाव स्वयं हुआ हो, वहाँ चार हजार हाथ तक का स्नान पवित्र स्थल माना गया है ।५४। पुण्य क्षेत्र के कूप, बावड़ी सरोवर सभी शिव-गङ्गा के स्वरूप हैं, ऐसा स्वयं भगवान् शकार का कथन है ।५५। उस स्थान पर स्नान, दान और जप करने से शिवलोक मिलता है। शिव-क्षेत्र में पहुंच कर मृत्यु पर्यन्त वहाँ निवास करना चाहिये ।५६।

द्वाहं दशाहं मास्यं वा सपिंडीकरणं तु वा ।
आब्दिकं वा शिवक्षेत्रे पिंथमथापि वा ।५७।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सद्य शिवपदं लभेत् ।
अथवा सप्तरात्रं वा वसेद्वा पंचरात्रकम् ।५८।
त्रिनात्रमेकरात्रं वा क्रमाच्छिवपदं लभेत् ।
स्ववर्णानुगुणं लोके स्वाचारात्प्राप्नुते नरः ।५९।
वर्णोद्धारेण भक्त्या च तत्फलातिशयं नरः ।
सर्वं कृतं कायनया सद्यः फलमवाप्नुयात् ।६०।
सर्वं कृतमकामेन साक्षाच्छिवपद प्रदम् ।
प्रातर्मध्याह्नसायाह्नमहस्त्रिष्वेकतः क्रमात् ।६१।
प्रातर्विधिकरं ज्ञेयं मध्याह्नं कामिकं तथा ।
साहाह्नं शांतिकं ज्ञेयं रात्रावपि तथैव हि ।६२।

द्वाह, दशाह, मासिक कर्म, सपिंडी–कर्म, श्राद्ध, सांवत्सरिक कर्म, क्षेत्र पिण्ड आदि कर्म शिव-क्षेत्र में करे ।।५७।। उसके सभी पाप नष्ट होकर शिवपद की प्राप्ति होती है। सप्त रात्रि या पाँच रात्रि तक शिव-क्षेत्र में निवास करना चाहिए ।५८। अथवा तीन रात्रि निवास करना चाहिये या केवल एक रात्रि ही निवास करे तो क्रम से शिव पद प्राप्त होता है। ब्राह्मणादि सभी वर्ण अपनी वर्ण्य अनुरूपतानुसार सुन्दर आचरण द्वारा उसके फल की अधिकता को पाते हैं ।५९। भक्ति-पर्वक कर्म करने से महाफल मिलता है। इससे उसका वर्णोद्धार होता

तथा अभीष्टपूर्ति शीघ्र ही होती है ।६०। सब प्रकार की कामनाओं का त्याग कर पूजन करे तो साक्षात् शिवपद मिलता है । प्रातः मध्याह्न और सायंकाल प्रत्येक समय में शिवजी की आराधना करे ।६१। प्रातः काल के जप से विधि सम्पादन, मध्याह्न के जप से कामना और सन्ध्या के जप से शान्ति मिलती है तथा रात्रि के जप का फल भी ऐसा ही है ।६२।

कालो निशीथो वै प्रोक्तो मध्ययामद्वयं निशि ।
शिवपूजा विशेषेण तत्कालेऽभीष्टसिद्धिदा ।६३।
एवं ज्ञात्वा नर कुर्वन्यथोक्तभलभाग्भवेत् ।
कलौ युगे विशेषेण फलसिद्धिस्तु कर्मणा ।६४।
उक्तेन केनचिद्वापि ह्यधिकारविभेदतः ।
सद्वृत्तिः पापभीरुश्च तत्तत्फलमवाप्नुयात् ।६५।

दो प्रहर रात्रि व्यतीत होने पर अर्ध रात्री होती है, उस समय किया गया शिव-पूजन विशेष फलदायक है । उससे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।६३। इस प्रकार जानकर जो करे उसे यथोक्त फल की प्राप्ति होती है । विशेष कर कलिकाल में कर्म से ही फल की सिद्धि होती है ।६४। वर्णन किये गये किसी अधिकार के भेद से श्रेष्ठ आचरण वाले, और पाप से डरने वाले को उपरोक्त सम्पूर्ण फल की प्राप्ति होती है ।६५।

।। सदाचार वर्णन ।।

सदाचारं श्रावयशु येन लोकाञ्जयेद्बुधः ।
धर्माधर्ममयान्ब्रूहि स्वर्गनारकदांस्तथा ।१।
सदाचारयुतो विद्वान्ब्राह्मणो नाम नामतः ।
वेदाचारयुतो विप्रो ह्यतैरेकैकबान्द्विजः ।२।
अल्पाचारोऽल्पवेदश्च क्षत्रियो राजसेवकः ।
किंचिदाचारवान्वैश्यः कृषिवाणिज्यकृत्तथा ।३।
शूद्रब्राह्मण इत्युक्तः स्वयमेव हि कर्षकः ।
असूयालुः परद्रोही चंडालद्विज उच्यते ।४।
पृथिवीपालको राजा इतरे क्षत्रिया मताः ।

धान्यादिक्रयवान्वैश्य इतरो वणिगुच्यते ।५।
ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां शुश्रूषुः शूद्र उच्यते ।
कर्षको वृषलो ज्ञेय इतरे चैव दस्यवः ।६।
सर्वो ह्युषः प्रांमुखश्च चिन्तयेद्देवपूर्वकान् ।
धर्मानर्थाश्च तत्क्लेशानायं च व्ययमेव च ।७।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! अब आप हमारे प्रति सदाचार कहें, जिससे प्राणी लोकों को जीतता है । धर्म और अधम किन आचरणों से होता है ? कौन से स्वर्ग के देने वाले हैं और कौन से आचरण नरक के ।१। सूतजी ने कहा—सदाचार से युक्त विज्ञ ब्राह्मण वेदाचार वाला होकर आगे कहे हुए एक-एक गुणों से द्विज संज्ञक होता है ।२। थोड़ा-सा वेद जानने वाला अल्पचारी राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रिय-ब्राह्मण और कृषि वाणिज्य करने वाला वैश्य-ब्राह्मण है ।३। जो स्वयं हल जोते उसे शूद्र-ब्राह्मण समझो । पर द्रोही अथवा पर-निन्दक विप्र को चाण्डाल—ब्राह्मण समझना चाहिये ।४। अब राजा और क्षत्रिय का भेद सुनो । पृथिवी का पालक राजा और अन्य क्षत्रिय हैं । धान्यादि विक्रेता वैश्य और रत्नादि बेचने वाले वणिक हैं ।५। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करने वाला शूद्र है । उनमें कृषि कर्म वाले वृषल और अन्य शूद्र दस्यु कहे जाते हैं ।६। सभी वर्णों को उषाकाल में उठकर पूर्व में मुखकर देवताओं का ध्यान करना चाहिए तथा धर्म, अर्थ, उनकी प्राप्ति में क्लेश और व्यय पर विचार करे ।७।

आयुर्द्वेषश्च मरणं पापं भाग्य तथैव च ।
व्याधिः पुष्टिस्तथा शक्तिः प्रातरुत्थानदिक्फलम् ।८।
निशांत्ययामीषा ज्ञेया यामार्ध सभिरुच्यते ।
तत्काले तु समुत्थाय विण्मूत्रे विसृजेद्द्विजः ।९।
गृहाद्दूरं ततो गत्या बाह्यतः प्रावृतस्तथा ।
उदङ् मुखः समाविश्य प्रतिबंधेऽन्यदिङ् मुखः ।१०।
जलाग्निब्राह्मणादीनां देवानां नाभिमुख्यतः ।
लिंगं पिधाय वामेन मुखमन्येन पाणिना ।११।

मलमुत्सृज्य न चोत्थाय न पश्येच्चैव तन्मलम् ।
उद्धृतेन जलेनैव शौचं कुर्याज्जलाद्बहिः ।१२
अथवा देवपित्रर्षितीर्थावतरणं बिना ।
सप्त वा पंच वा तिस्रो गुदं संशोधयेन्मृदा ।१३।
लिंगे कर्कोटमात्रं तु गुदे प्रसतिरिष्यते ।
तत उत्थाय पद्धस्तशौच गण्डूषमष्टकम् ।१४।

पूर्वादि दिशाओं की ओर मुख से उठने का फल कहते हैं। आयु, द्वेष, मृत्यु, पाप, शुभ-अशुभ कर्म्म, व्याधि, पुष्टि, शक्ति यह आठ दिशाओं की ओर मुख से उठने पर होती है ।८। रात्रि का अन्त उषाकाल है, उसमें आधे प्रहर की संधि कही जाती है। ब्राह्मण को उसी समय उठ कर शौचादि कर्म्म करने चाहिए ।९। घर से दूर चला जाय, शिर से कपड़ा लपेट ले और उत्तर की ओर मुख करके बैठे तथा अन्य दिशाओं की ओर न देखे ।१०। जल, अग्नि, ब्राह्मण और देवताओं के सामने की ओर न बैठे। बाँए हाथ से लिंग और दाँए हाथ से मुख को ढक ले ।११। तब मल त्याग करे, परन्तु त्याग के पश्चात् मल को न देखे, फिर जल के स्थान से अलग स्थान में पात्र के जल से शौच ले ।१२। अथवा देवता, पितर ऋषियों के तीर्थों को छोड़कर मोखर आदि के जल से सात बार, पाँच बार या तीन बार पहिले मिट्टी से मल स्थान को स्वच्छ करे ।१३। लिंग की शुद्धता के लिये कर्कोटक के फल के बराबर मिट्टी ले और मल स्थान की शुद्धि के लिये आधी अंजुली मिट्टी ले। फिर हाथ पाँव धोकर आठ बार कुल्ले करे ।१४।

येन केन च पात्रेण काष्ठेन च जलाद्बहिः ।
कार्यं सत्यज्य तर्ज्जनीं दंतधावनमीरितम् ।१५।
जलदेवान्नमस्कृत्य मंत्रेण स्नानमाचरेत् ।
अशक्तः कंठदघ्नं वा कटिदघ्नमथापि वा ।१६।
आजानुजलमासिच्य मंत्रस्नान समाचरेत् ।
देवादींस्तपपेद्विद्वांस्तत्र तीर्थजलेन च ।१७।
धौतवस्त्रं समादाय पचकच्छेन धारयेत् ।

उत्तरीयं च किंचैव धार्यं सर्वेषु कर्मसु ।१८।
आपोहिष्ठेति शिरसि प्रोक्षयेत्पापशांतये ।१९।
यस्येति मन्त्रं पादे तु संधिप्रोक्षण मुच्यते ।२०।
पादे मूर्ध्नि हृदि चैव मूर्ध्नि हृत्पाद एव च ।
हृत्पादमूर्ध्नि संप्रोक्ष्य मन्त्रस्नानं विदुर्बुधाः ।२१।

किसी वृक्ष के पत्ते या काष्ठ की डंडी से तर्जनी अंगुली को छोड़कर, जल से बाहर बैठकर दाँतुन करनी चाहिये ।१५। फिर जल देवताओं को नमस्कार कर मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान करे । यदि कंठ तक या कमर तक जल में उतर कर स्नान करने की शक्ति न हो ।१६। तो जानु पर्यन्त जल में जाकर मन्त्र सहित स्नान करे । उस तीर्थ जल से विद्वान पुरुष को देवादि का तर्पण करना चाहिये ।१७। फिर धोती लेकर पंच कच्छ अर्थात् दांए-बांए दो-दो और पीठ में एक इस प्रकार पांच लपेटा दे तथा सबकर्म में उत्तरीय धारण करे ।१८। 'आपोहिष्ठेति' इस मन्त्र से पाप शान्ति के लिये सिर पर जल छिड़के तथा इसी मन्त्र के एक-एक चरण से चरण आदि नौ स्थानों में क्रम पूर्वक प्रोक्षण करे। 'यस्येति' यही उसका मंत्र है इसे ही सन्धि प्रोक्षण कहा गया है ।१९–२०। चरण, शिर, हृदय शिर-हृदय, चरण-हृदय, चरण-शिर इस क्रम से प्रोक्षण कर मन्त्र स्नान करना चाहिये ।२१।

ईषत्स्पर्शे च दौः स्वास्थ्ये राजराष्ट्रभयेऽपि च ।
अगत्य गतिकाले च मन्त्रस्नान समाचरेत् ।२२।
प्रातः सूर्यानुवाकेन सायमग्न्यनुवाकतः ।
अपः पीत्वा तथा मध्ये पुनः प्राक्षणमाचरेत् २३।
गायत्र्या जपमन्त्रान्ते त्रिरूर्ध्वं प्राग्विनिक्षिपेत् ।
मन्त्रेण सह चैकं वै मध्येर्घ्यं तु रवेर्द्विजा ।२४।
अथ जाते च सायाह्ने भुवि पश्चिमदिङ्मुखः ।
उद्धृत्य दद्यात्प्रातस्तु मध्याह्नेऽगुलिभिस्तथा ।२५।
अंगुलीनां च रंध्रेण लम्बं पश्येद्दिवाकरम् ।
आत्मप्रदक्षिक्षं कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ।२६।

सायं मुहूर्तादर्वाक्तु कृता सन्ध्या वृथा भवेत् ।
अकालात्काल इत्युक्तो दिनेऽतीते यथाक्रमम् ।२७।
दिवाऽतीते च गायत्रीं शतं नित्यं क्रमाज्जपेत् ।
आदशाहात्परातीतं गायत्रीं लक्षमभ्यसेत् ।२८।

शरीर रोग ग्रस्त हो, या राजा तथा राष्ट्र का भय उपस्थित हो या मार्ग-गमन अथवा अपवित्र वस्तु का स्पर्श होने पर मन्त्र स्नान ही करे ।२२। प्रातः काल 'सूर्य्याश्चमामन्युश्चेति' इस सूर्य अनुवाक से तथा सन्ध्या काल में 'अग्निश्चमामन्युश्चेति' इस अग्नि अनुवाक् से मध्य में जल पीकर फिर पूर्ववत् मार्जन करना चाहिये ।२३। गायत्री मन्त्र का जाप करके तीन बार ऊपर को जल फेंके । मध्याह्न संध्या की विधि— मन्त्र सहित मध्य में सूर्य को अर्घ्य-दान करे ।२४। सन्ध्या होने पर पश्चिम की ओर मुख करके बैठे । प्रातः एवं मध्यान्ह में देव तीर्थ से जल लेकर अँगुलियों से जल दे ।२५। फिर अँगुलियों के छेद से अस्त होते हुए सूर्य के दर्शन करे और अपनी प्रदक्षिणा करके शुद्ध आचमन करे ।२६। सन्ध्या के मुहूर्त से पहिले की जाने वाली सन्ध्या व्यर्थ होती है, इसलिये सन्ध्या असमय में न करे । दिन के व्यतीत होने पर सन्ध्या न करने का निम्न प्रायश्चित कहा गया है ।२७। नित्य के जप से सौ गायत्री का अधिक जप करे । यदि सन्ध्या किये हुये दस दिन व्यतीत हो जावें तो एक लाख गायत्री का जप करे ।२८।

मासातीते तु नित्ये हि तुनश्चोपनयनं चरेत् ।
ईशो गौरी विष्णुर्ब्रह्मा चंद्रश्च वै यमः ।२९।
एवंरूपांश्च वै देवांस्तर्पयेदर्थसिद्धये ।
ब्रह्मार्पण ततः कृत्वा शुद्धाचमनमाचरेत् ।३०।
तीर्थदक्षिणतः शस्ते मठे मन्त्रालये बुधः ।
तत्र देवालये वापि गृहे वा नियतस्थले ।३१।
सर्वान्देवान्नमस्कृत्य स्थिरबुद्धिः स्थिरासनः ।
प्रणवं पूर्वमभ्यस्य गायत्रीमभ्यसेत्ततः ।३२।
जीवब्रह्मैक्यविषयं बुद्ध्वा प्रणवमभ्यसेत् ।

त्रैलोक्यसृष्टिकर्तारं स्थितिकर्तारमच्युतम् ।३३।
संहर्तारं तथा रुद्रं स्वप्रकाशमुपास्महे ।
ज्ञानकर्मेन्द्रियाणां च मनोवृत्तीधियस्तथा ।३४।
भोगमोक्षप्रदे धर्मे ज्ञाने च प्रेरयेत्सदा ।
इत्थमर्थधिया ध्यायन्ब्रह्मा प्राप्नोति निश्चयम् ।३५।

यदि एक मास तक सन्ध्या न की हो तो पुनः उपनयन करे। ईश, गौरी, स्कन्द, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र और यम इन सब देवताओं को एक ही जान कर अर्थ सिद्धि हेतु तृप्त करे और ब्रह्मार्पण कर शुद्ध आचमन करे ।२९-३०। तीर्थ के दक्षिण ओर अथवा मठ में, मन्त्रालय या देवालय में अथवा अपने गृह के नियत स्थान में सब देवताओं को नमस्कार कर स्थिर बुद्धि तथा स्थिर आसन से पहिले ओंकार और फिर गायत्री का अभ्यास करना चाहिये ।३१-३२। जीव और ब्रह्म की एकता देख ओंकार को जपे, त्रिलोकी के रचियता ब्रह्मा, स्थितिकर्त्ता नारायण और संहार कर्ता रुद्र की हम उपासना करते हैं। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, मन की वृति और बुद्धि को ।३३-३४। वह परमात्मा भुक्ति-मुक्तिदायक धर्म में प्रवृत्त करे। इस प्रकार अर्थ विधि से ध्यान करने पर अवश्य ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है ।३५।

केवलं वा जपेन्नित्यं ब्राह्मणस्य च पूर्तये ।
सहस्रमभ्यसेन्नित्यं प्रातर्ब्राह्मणपुंगवः ।३६।
अन्येषां च यथाशक्ति मध्याह्ने च शतं जपेत् ।
सायं द्विदशकं ज्ञेयं शिखाष्टकसमन्वितम् ।३७।
मूलाधारं समारभ्य द्वादशांशस्थितांस्तथा ।
विद्येशब्रह्मविष्णवीशजीवात्मपरमेश्वरान् ।३८।
ब्रह्मबुद्ध्या तदैक्यं च सोहंभावनया जपेत् ।
तानेव ब्रह्मरंध्रादौ कायाद्बाह्ये च भावयेत् ।३९।
महत्तत्वं समारभ्य शरीरं तु सहस्रकम् ।
एकैकस्माज्जपादेकमतिक्रम्य शनैः शनैः ।४०।
परस्मिन्योजयेज्जीवं जपतत्वमुदाहृतम् ।

शतद्विदशकं देहं शिखाष्टकसमन्वितम् ।४१।
मन्त्रणां जप एवं हि जपमादिक्रमाद्विदुः ।
सहस्रं ब्रह्मदं विद्याच्छतमद्रं पदं विदुः ।४२।

अर्थ-ज्ञान के अभाव वाले ब्राह्मणत्व की पूर्ति के लिये भी श्रेष्ठ ब्राह्मण को नित्य प्रातःकाल उठकर इसका हजार बार जप करना चाहिये ।३६। अन्य वर्ण वाले क्षत्रिय या वैश्य की मध्यान्ह में सौ बार और सन्ध्या काल में एक हजार आठ बार अथवा बीस बार जप करना चाहिये ।३७। मूलाधार चक्र से प्रारम्भ कर ब्रह्मरंध्र तक स्थित चक्रों में विद्येश, ब्रह्मा, विष्णु, ईश, जीवात्मा परमेश्वर को ब्रह्म बुद्धि द्वाराएक ही जानकर सोहं भाव से जपे तथा उन्हीं विद्येश आदि का ब्रह्मरंध्र आदि में शरीर से बाहर ध्यान करे ।३८-३९। महत्तत्व से प्रारम्भ करके प्रारब्ध के फल से उत्पन्न सहस्रों शरीरों के समूह की उपलब्धि को एक जप से एक शरीर के क्रम से अतिक्रमण कर धीरे-धीरे जीव को पर-ब्रह्म में लगादे यही जप तत्व है । इस जप को दो हजार आठ संख्या तक जपना चाहिये ।४०-४१। मन्त्रों के जाने का प्रथम क्रम यही कहा गया है । हजार बार जपने से ब्रह्म पद की और सौ बार जप करने से इन्द्र पद की प्राप्ति होती है ।४२।

इतरत्वात्मरक्षार्थं ब्रह्मयोनिषु जायते ।
दिवाकरमुपस्थाय नित्यमित्थं समाचरेत् ।४३।
लक्षद्वादशयुक्तस्तु पूर्णब्राह्मण ईरितः ।
गायत्र्या लक्षहीनं तु वेदकार्यं न योजयेत् ।४४।
आसन्नतेस्तु नियमं पश्चात्प्रव्राजनं चरेत् ।
प्रातर्द्वादशसाहस्रं प्रव्राजी प्रणवं जपेत् ।४५।
दिने दिने त्वतिक्रांते नित्यमेव क्रमाज्जपेत् ।
मासादौ क्रमशोऽतीते सार्दलक्षजपेन हि ।४६।
अत उर्ध्वमतिक्रांते पुनः प्रौषं समाचरेत् ।
एवं कृत्वा दोषशांतिरन्यथा रौरवं व्रजेत् ।४७।
धर्मार्थयोस्ततो यत्नं कुर्यात्कामी न चेतरः ।

ब्राह्मणो मुक्तिकामः स्याद्ब्रह्मज्ञानं सदाऽभ्यसेत् ।४८।
धर्मादर्थोऽर्थतो भोगो भोगाद्वैराग्यसंभवः ।
धर्मार्जितार्थभोगेन वैराग्यमुपजायते ।४९।

यदि इससे न्यून करे तो ब्राह्मण के यहाँ जन्म होता है। सूर्य के सामने स्थित होकर नित्य प्रति इसी प्रकार करना चाहिए ।४३। बारह लाख जप करने से पूर्ण ब्राह्मणत्व प्राप्त होता है। जिसने एक लाख गायत्री मन्त्र न जपे हों, उसे वेद कार्य में लगाना उचित नहीं है ।४४। सत्तर वर्ष तक नियम पूर्वक रहे, फिर सन्यास ग्रहण करले। सन्यासी को नित्य प्रातःकाल बारह हजार ओंकार का जप करना चाहिये ।४५। इस प्रकार नियम पूर्वक नित्य प्रति जप करे। जब ऐसा करते हुए एक मास व्यतीत हो जाता है, तब उसका डेढ़ लाख जप पूर्ण होता है ।४६। इससे दोषों की शान्ति होती है। इससे अधिक संख्या में जप होने पर सन्यास मन्त्र को ग्रहण करे। अन्यथा रौरव नरक प्राप्त होता है ।४७। सन्यासी से इतर जन धर्म, अर्थ, आदि में यत्नपूर्वक कर्म करें। मुक्ति की इच्छा वाले ब्राह्मण को सदा ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करना चाहिये ।४। धर्म से अर्थ का उपार्जन कामना के निमित्त नहीं होता, उससे तो वैराग्य की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार धर्म से उत्पन्न भोग से वैराग्य ही होता है ।४९।

विपरीतार्थभोगेन राग एव प्रजायते ।
धर्मश्च द्विविधः प्रोक्तो द्रव्यदेहद्वयेन च ।५०।
द्रव्यमिज्यादिरूपं स्यात्तीर्थस्नानादि दैहिकम् ।
धर्मेण धनमाप्नोति तपसा दिव्यरूपता ।५१।
निष्कामः शुद्धिमाप्नोति शुद्धया ज्ञानं न संशयः ।
कृतादौ हि तपः श्लाघ्यं द्रव्यधर्मः कलौ युगे ।५२।
कृते ध्यानाज्ज्ञानसिद्धिस्त्रेतायां तपसा तथा ।
द्वापरे यजनाज्ज्ञानं प्रतिमापूजया कलौ ।५३।
यादृशं पुण्यपापं वा तादृशं फलमेव हि ।
द्रव्यदेहांगभेदेन न्यूनवृद्धिक्षयादिकम् ।५४।

विद्याद्दुर्वृत्तितो दुखं सुखं विद्यात्सुवृत्तितः ।
धर्मार्जनमतः कुर्याद्भोगमोक्षप्रसिद्धये ।५५।
सकुटुम्बस्य विप्रस्य चतुर्जनयुतस्य च ।
शतवर्षस्य वृत्ति तु दद्यात्तद्ब्रह्मलोकदम् ५६।

अर्थ के विपरीत भोग के राग की उत्पत्ति होती है । धर्म दो प्रकार का कहा है–एक देह के द्वारा और दूसरा द्रव्य के द्वारा ।।५०।। द्रव्य के द्वारा यज्ञादि रूप धर्म और देह के द्वारा तीर्थ स्नानादि रूप धर्म होता है । धन से धर्म और तप से दिव्यता प्राप्त होती है । १। निष्काम कर्म से शुद्धि और शुद्धि से ज्ञान मिलता है । सत्युग आदि में तप ही साध्य था, परन्तु कलियुग में तो द्रव्य ही धर्म समझना चाहिये ।५२। सत्युग में ध्यान द्वारा ही ज्ञान की सिद्धि होती थी, त्रेता में तप के द्वारा और द्वापर में यज्ञ के द्वारा, परन्तु कलियुग में प्रतिमा पूजन से ही ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है ।५३। जैसा पुण्य-पाप रूप कर्म किया जाता है, वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । द्रव्य और देह के भेद से पुण्य-पाप की न्यूनता, अधिकता तथा समाप्ति होती है ।५५। कुवृत्ति से दु;ख और सुवृत्ति से सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिये धर्म से ही अर्चना करनी उचित है ।४५। ब्राह्मण कुल परिवार सहित सौ वर्ष तक श्रेष्ठ आचार का पालन करे, इतनी जीविका उसको देने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।५६।

चांद्रायणसहस्रं तु ब्रह्मलोकप्रदं विदुः ।
सहस्रस्य कुटुम्बस्य प्रतिष्ठां क्षत्रियश्चरेत् ।५७।
इन्द्रलोकप्रदं विद्यादयुतं ब्रह्मलोकदम् ।
यांदेवतां पुरस्कृत्य दानमाचरते नरः ।५८।
तत्तल्लोकमवाप्नोति इति वेदविदो विदुः ।
अर्थहीनः सदा कुर्यात्तपसामर्जनं तथा ।५९
तीर्थाच्च तपसा प्राप्यं सुखमक्षय्यमश्नुते ।
अर्थाजनमथो वक्ष्ये न्यायतः सुसमाहितः ।६०।
कृतात्प्रतिग्रहाच्चैव याजनाच्च विशुद्धतः ।

अद्वैन्यादनतिक्लेशाद्ब्राह्मणो धनमर्जयेत् ।६१।
क्षत्रियो बहुवीर्येण कृषिगोरक्षणाद्विशः ।
न्यायार्जितस्य वित्तस्य दानात्सिद्धिं समश्नुते ।६२।
ज्ञानसिद्धया मोक्षसिद्धिः सर्वेषां गुर्वनुग्रहात् ।
मोक्षात्स्वरूपसिद्धिः स्यात्परानन्दं समश्नुते ।६३।
सत्संगात्सर्वमेतद्वै नराणां जायते द्विजाः ।
धनधान्यादिकं सर्वं देयं वै गृहमेधिना ।६४।

हजार चान्द्रायण व्रत करने से भी ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। जो क्षत्रिय सहस्र कुटुम्ब की आजीविका करे उसे इन्द्रलोक की तथा दस सहस्र की आजीविका करे तो ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। मनुष्य जिस जिस देवता के उद्देश्य से दान करता है, उस देवता के लोक को प्राप्त होता है, ऐसा वेदविज्ञों का कथन है। निर्धनों को सदा तप रूपी धन का संचय करना चाहिये।५७-५९। जो धर्म, तीर्थ और तप के द्वारा प्राप्त होता है, उससे भी अक्षय सुख की प्राप्ति होती है तथा धन को भी न्यायपूर्वक संग्रह करने में सावधान रहे।६०। यज्ञ, प्रतिग्रह, स्वच्छता, अदीनता तथा क्लेश रहित वृत्ति के द्वारा ही ब्राह्मण को धन का संग्रह कदना चाहिए।६१। क्षत्रिय भुज बल से, वैश्य कृषि और वाणिज्य से धन का संग्रह करे। जो दान न्याय से उपार्जित होता है उससे सिद्धि प्राप्त होती है।६२। ज्ञान की सिद्धि से मोक्ष की प्राप्त होती है और गुरु की कृपा से मोक्ष होने पर स्वरूप की सिद्धि और उससे परमानन्द की प्राप्ति होती है।६३। हे विप्रो ! यह सभी कुछ सत्संग द्वारा प्राप्त हो सकता है। गृहस्थ को धन-धान्य आदि अनेक पदार्थ दान करना कर्तव्य है।६४।

ग्रहीता हि गृहीतस्य दानाद्वै तपसा तथा ।
पापसंशोधनं कुर्यादन्यथा रौरवं व्रजेत् ।६५।
आत्मवित्तं त्रिधा कुर्याद्धर्मवृद्ध्यात्मभोगतः ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं कर्म कुर्यात्तु धर्मतः ।६६।
वित्तस्य वधनं कुर्यादृद्ध्यांशेन हि साधकः ।
हितेन मितमेध्येन भोगं भोगांशतश्चरेत् ।६७।

कृष्यर्जिते दशांगं हि देयं पापस्य शुद्धये ।
शेषेण कुर्याद्धर्मादि अन्यथा रौरवं व्रजेत् ।६८।
अथवा पापबुद्धिः स्यात्क्षयं वा सत्यमेष्यति ।
वृद्धिवाणिज्यके देयं षडंशं च विचक्षणैः ।६९।

दान ग्रहण करने वाला ग्रहण किये दान से या तप से उसके पाप का मार्जन करे अन्यथा रौरव नरक की प्राप्ति होती है ।६५। अपने धन के तीन भाग करे—एक धर्म के लिये, दूसरा वृद्धि के लिये और तीसरा भोग के लिए । नित्य नैमित्तिक काम्य कर्म धर्म पूर्वक करे ।६६। साधक वृद्धि के अंश ब्याज से धन की वृद्धि करे और किसी को पीड़ित न करे, निषिद्ध व्यापार से धन-वृद्धि न करे तथा भोगांश से स्वल्प भोग को भोगे ।६७। कृषि द्वारा उपार्जित धन से दशम अंश को पाप शुद्धि के दान कर दे, शेष द्रव्य से धर्मादि कार्य करे, अन्यथा रौरव नरक मिलता है ।६८। पाप से धन की वृद्धि करने से खेती क्षीण होती है । बुद्धिमान को छठा अंश वाणिज्य की वृद्धि में लगाना चाहिए ।६९।

पृष्टं सर्वं सदा देयमात्मशक्त्यनुसारतः
जन्मान्तरे ऋणी हि स्याददत्ते पृष्ठवस्तुनि ।७०।
परेषां च तथा दोषं न प्रशंसेद्विचक्षणः ।
विद्वेषेण तथा ब्रह्मञ्छुतं दृष्टं च नो वदेत् ७१।
न वदेत्सर्वजंतूनां हृदि रोषकरं बुधः ।
संध्ययोरग्निकार्यं च कुर्यादैश्वर्यसिद्धये ।७२।
अशक्तस्त्वेककाले वा सूर्याग्नी च यथाविधि ।
तंडुलं धान्यमाज्यं वा फलं कंदं हविस्तथा ।७३।
स्थालीपाकं तथा कुर्याद्यथाकालं यथाविधि ।
प्रधानहोममात्रं वा हव्याभावे समाचरेत् ।७४।
नित्यसंधानमित्युक्तं तमजस्रं विदुर्बुधा ।
अथवा जपमात्रं वा सूर्यवंदनमेव च ।७५।
एवमात्मार्थिनः कुर्युरर्थार्थी च यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञरता नित्यं देवपूजारतास्तथा ।७६।

अग्निपूजापरा नित्यं गुरुपूजारतास्तथा ।
ब्राह्मणानां तृप्तिकरः सर्वे स्वर्गस्य भागिनः ।७७

याचक को अपनी शक्ति के अनुसार दान करना चाहिए । कहकर न देने पर जन्मान्तर में ऋणी होना पड़ता है ।७०। बुद्धिमान मनुष्यों को दूसरों के दोष नहीं कहने चाहिए । विशेष कर सुने हुए अथवा देखे हुए दोषों का कथन भी न करे ।७१। प्राणियों के हृदयों में क्रोध उत्पन्न कर देने वाली बात कभी भी न कहे तथा ऐश्वर्य की सिद्धि के लिये दोनों सन्ध्या कालों में अग्निहोत्र करना चाहिए ।७२। यदि दोनों काल न कर सके तो विधिवत् एक समय ही सूर्य अग्नि की उपासना और तर्पण करे तथा चावल, धान्य, घृत, कन्द, हवि आदि विधि द्वारा स्थालीपाक करे । यदि हव्य न हो तो हवन मात्र ही करना चाहिए ।७३-७४। पण्डितों ने नित्य स्थापित अग्नि को अजस्र कहा है अथवा केवल जप करे या सूर्य की वन्दना ही करे ।७५। इस प्रकार आत्म प्राप्ति के इच्छुक, सर्वदा विधि-पूर्वक ब्रह्मयज्ञ में प्रीति करने वाले तथा देवताओं का पूजन करने वाले या प्रेम-पूर्वक नित्यप्रति अग्नि और गुरु की पूजा करने वाले तथा ब्राह्मणों को तृप्त करने वाले सत्पुरुष स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।७६-७७।

अग्नियज्ञादिवर्णन

अग्नियज्ञं देवयज्ञं ब्रह्मयज्ञं तथैव च ।
गुरुपूजां ब्रह्मतृप्तिं क्रमेण ब्रूहि नः प्रभो ।१
अग्नौ जुहोति यद्द्रव्यमग्नियज्ञः स उच्यते ।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां समिदाधानमेव हि ।२
समिदानो व्रताद्यं च विशेषयजनादिकम् ।
प्रथमाश्रमिणामेव यावदौपासन द्विजाः ।३
आत्मन्यारोपिताग्नीनां वनिनां ततिनां द्विजाः ।
हितं च मितमेध्यान्नं स्वकाले भोजनं हुतिः ।४
औपासनाग्निसंधानं समारभ्य सुरक्षितम् ।
कुंडे वाप्यथ भाण्डे वा तदजस्रं समीरितम् ।५

अग्निमात्मन्यरण्यां व राजदैवशाद्ध्रुवम् ।
अग्नित्यागभयादुक्तं समारोपितमुच्यते ।६
संपत्करी तथा ज्ञेया सायमग्न्याहुतिर्द्विजाः ।
आयुष्करोति विज्ञेया प्रातः सूर्याहुतिस्तथा ।७

ऋषियों ने कहा—अग्नियज्ञ, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, गुरुपूजन तथा ब्रह्म तृप्ति क्रमशः यह सभी आप हमारे प्रति कहिये ।१। सूतजी ने कहा—अग्नि में द्रव्य का हवन होना द्रव्य-यज्ञ है । ब्रह्मचर्याश्रम में स्थित पुरुषों को समिधा आहरण पूर्वक अग्निहोत्र करना उचित है ।१। हे विप्रो ! अग्नि में समिधा का हवन ही ब्रह्मचर्य व्रत आदि में होता है । जब तक विवाह न हो तब तक यह विशेष यज्ञ ब्रह्मचारियों को करना चाहिए ।३। विवाह होने पर दो समय अग्निहोत्र करे, जिन्होंने आत्मा में अग्नि का आरोपण किया है, ऐसे वनवासी यतियों को थोड़ा-सा पवित्र अन्न का भोजन कराना ही अग्निहोत्र है ।४। उपासना अग्नि संधान का पालन सम्यक् प्रकार करे । उस अग्नि को वेदी में या बर्तन में रखना चाहिए ।५। अग्नि को आत्मा में धारण करे । राज-भय या दैव-भय हो तो समिधा में धारण करे, अग्नि का त्याग भय से ही कहा है ।६। ब्राह्मणों द्वारा सायंकाल में दी जाने वाली आहुति सम्पत्ति को प्राप्त कराने वाली है तथा प्रातःकाल दी हुई सूर्याहुति से आयु की वृद्धि होती है ।७।

अग्नियत्रोह्ययं प्रोक्तो दिवा सूर्यनिवेशनात् ।
इन्द्रादीन्सकलान्देवानुद्दिश्याग्नौ जुहोतियत् ।८
देवयज्ञं हि तं विद्यात्स्थालीपाकादिकान्क्रतून् ।
चौलादिकम् तथा ज्ञेयं लौकिकाग्नौ प्रतिष्ठितम् ।९
ब्रह्मयज्ञं द्विजः कुर्याद्देवानां तृप्तये सकृत् ।
ब्रह्मयज्ञ इति प्रोक्तो वेदस्याध्ययनं भवेत् ।१०
आदौ त्रैलोक्यवृद्धचर्थं पुण्यपापे प्रकल्पिते ।
तयोः कर्त्रोस्ततो वारमिद्रस्य च यमस्य च ।११
भोगप्रदं मृत्युहरं लोकानां च प्रकल्पितम् ।

आदित्यादीन्स्वरूपान्सुखदुःखस्य सूचकान् ।१२
वारेशान्कल्पयित्वादौ ज्यौतिश्चक्रप्रतिष्ठान् ।
स्वस्ववारे तु तेषां तु पूजा स्वस्वफलप्रदा ।१३
आरोग्यं सम्पदश्चैव व्याधीनां शान्तिरेव च ।
पुष्टिरायुस्तथा भोगो मृतेर्हानिर्यथाक्रमम् ।१४

दिन में सूर्य के अग्नि में प्रविष्ट होने से इसे अग्नियज्ञ कहा है। इन्द्रादि देवताओं के लिये अग्नि में हवन किया जाता है।८। दर्शपूर्ण माँस, स्थालीपाक आदि सांसारिक यज्ञ, वेद-यज्ञ अथवा मर्माधान आदि उपासना लौकिक अग्नि की प्रतिष्ठा है।९। ब्राह्मणों को देवताओं की प्रीति के लिए सदा ब्रह्म-यज्ञ करना चाहिए। जिस यज्ञ में वेद पाठ होता है, वह ब्रह्मयज्ञ है।१०। त्रैलोक्य वृद्धि के निमित्त ईश्वर ने प्रथम पुण्य पाप के उत्पन्न करने वाले इन्द्र और यम के वार कल्पित किये।११। इस प्रकार सुख-दुःख की सूचना देने वाले रविवार आदि भोग प्रदायक और लोकों की मृत्यु शमन करने वाले कल्पित किये गये। रविवार के स्वामी शिव चन्द्रवार की दुर्गा, मङ्गल के स्कन्द, बुध के विष्णु, बृहस्पति के यम, शुक्र के ब्रह्मा और शनिवार के इन्द्र हैं।१२। नक्षत्र में व चक्र में प्रतिष्ठित कर इन वारों के स्वामियों की कल्पना कर उन-उन वारों में पूजन करे तो उसके अनुसार ही फल प्राप्त होता है।१३। आरोग्य, सम्पत्ति, व्याधियों का शमन, पुष्टि, आयु, भोग तथा मृत्यु की हानि यह सब क्रमानुसार ही मनुष्य को प्राप्त होते हैं।१४।

वारक्रमफलं प्राहुर्देवप्रीतिपुरः सरम् ।
अन्येषामपि देवानां पूजयाः फलदः शिवः ।१५
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यत्पूर्वाभावे तथोत्तरम् ।
नेत्रयोः शिरसो रोगे तथा कुष्ठस्य शान्तये ।१६
आदित्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः ।
दिनं मास तथा वर्षं वर्ष त्रयमथापि वा ।१७
प्रारब्धं प्रबलं चेत्स्यान्नश्येद्रोगजरादिकम् ।
जपाद्यमिष्टदेवस्य वरादीनां फलं विदुः ।१८

पापशांतिर्विशेषेण ह्यादिवारो निवेदयेत् ।
आदित्यस्यैव देवानां ब्राह्मणानां विशिष्टदम् ।१६
स्त्रीणां च तृप्तये तद्वद्देयं वस्त्रादिकं शुभम् ।
अपमृत्युहरे मन्दे रुद्रादींश्च यजेद्बुद्धः ।२०
तिलहोमेन द्रानेन तिलान्नेन च भोजयेत् ।
इत्थं यजंश्च विबुधानारोग्यादिफलं लभेत् ।२१

जिन देवताओं के जो बार हैं वे उन-उन देवताओं की प्रीति के देने वाले हैं। परन्तु देवताओं की पूजा का फल शिवजी ही देते हैं।१५। सब में पूजन श्रेष्ठ है। नेत्र रोग, शिर रोग तथा कुष्ट रोग के निवारणार्थ आदित्य का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन करावे। इस प्रकार दिवस, मास, वर्ष और तीन वर्ष तक करता रहे।१६-१७। प्रारब्ध के प्रबल होने पर ज्वरादि रोग शान्त होंगे। इष्ट देवता के लिए तप, होम, दान आदि करने से देवता वार के अनुसार फल देते हैं।१८। रविवार के दिन पाप-शान्ति के लिए पूजन और देवता को प्रसन्न करने वाले द्रव्य निवेदन करे। यह बार देवता व ब्राह्मणों के लिए विशेष फल देने वाला है।१९। स्त्रियों की तृप्ति के निमित्त वस्त्रादि दे तथा अपमृत्यु का शमन करने के लिए शनिवार को रुद्रादि का यजन करे।२०। तिल का होम, दान या तिल मिश्रित भोजन करावे। इस प्रकार से देवताओं का यजन करने वाले को आरोग्यादि की प्राप्ति होती है।२१।

देवानां नित्ययजने विशेषयजनेऽपि च ।
स्नाने दाने जपे होमे ब्राह्मणानां च तर्पणे ।२२
तिथिनक्षत्रयोगे च तत्तद्देवप्रपूजने ।
आदिवारादिवारेषु सर्वज्ञो जगदीश्वरः ।२३
तत्तद्रूपेण सर्वेषामारोग्यादिफलप्रदः ।
देशकालानुसारेण तथा पात्रानुसारतः ।२४
द्रव्यं श्रद्धानुसारेण तथा लोकानुसारतः ।
तारतम्यक्रमान्देवस्त्वारोग्यादीन्प्रयच्छति ।२५
शुभादावशुभांते च जन्मर्क्षेषु गृहे गृही ।

आरोग्यादिवृद्धचथमादित्यादीन्ग्रहान्यजेत् ।२६
दरिद्रास्तपसा देवान्यजेदाढयो धनेन हि ।
पुनश्चैवंविधं धर्मं कुरुते श्रद्धया यह ।२७
पुनश्च भोगान्विविधाभुक्त्वा भूमौ प्रजायते ।
छायां जलाशयं ब्रह्मप्रयिष्टां धर्मसंचयम् ।२८
सर्वं वित्तवान्कुर्यात्सदा भोगप्रसिद्धये ।
कालाच्च पुण्यपाकेन ज्ञानसिद्धिः प्रजायते ॥२९
य इमं शृणुतेऽध्यायं पठते वा नरो द्विजाः ।
श्रवणस्योपकर्त्ता च देवयज्ञफलं लभेत् ।३०

देवताओं का नित्य यजन तथा विशेष यजन में भी स्नान, दान, जप, होम और ब्राह्मणों का तर्पण करने से सब वारों के पहिले दिन ही सर्वज्ञ परमेश्वर ही उन-उन देवताओं के रूप में आरोग्य आदि देते हैं। तथा देश, काल, पात्र और द्रव्य की श्रद्धा के अनुसार एवं लोकानुसार तारतम्य के क्रम से सभी को भगवान् शिवजी फल देते हैं। मङ्गल कार्य के आदि अन्त में एवं जन्म नक्षत्र में गृहस्थों को आरोग्यादि की प्राप्ति के लिए आदित्यादि ग्रहों की शान्ति करनी चाहिए।२२-२६। दरिद्र व्यक्तियों को तप के द्वारा देव यजन करना चाहिये और धनिक को पूजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य श्रद्धा से धर्म करता है।२७। वह स्वर्ग में अनेक सुखों को भोगकर पृथिवी पर आता है। वृक्षारोपण, सरोवर का निर्माण, पाठशाला चलाना तथा धर्म बोधक ग्रन्थों का संग्रह।२८। यह सब कर्म धनी पुरुष को भोग की प्राप्ति के लिए सदा करने चाहिए। इस प्रकार पुण्य का परिपाक होने पर ही ज्ञान की सिद्धि होती है।२९। इस अध्याय को जो ब्राह्मण पढ़ते, श्रवण करते या सुनाते हैं वे देवयज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं।३०।

देवयज्ञादि में देश-काल-पात्र वर्णन

देशादीन्क्रमशो ब्रूहि सूत सर्वार्थवित्तम ।
शुद्धं गृहं समफल देवयज्ञादिकर्मसु ।१

ततो दशगुणं गोष्ठं जलतीरं ततो दशः ।
ततो दशगुणं बिल्वतुलस्यश्वत्थमूलकम् ।२
ततो देवालयं विद्यात्तीर्थतीरं ततो दश ।
ततो दशगुणं नद्यास्तीर्थं तद्यास्ततो दश ।३
सप्तगङ्गानदीतीर्थं तस्या दशगुणं भवेत् ।
गङ्गा गोदावरी चैव कावेरी ताम्रपर्णिका ।४
सिन्धुश्च सरयू रेवा सप्त गङ्गाः प्रकीर्तिताः ।
ततोऽब्धितीरे दश च पर्वताग्रे ततो दश ।५
शुद्धात्मनः शुद्धदिनं पुण्यं समफलं विदुः ।
तस्माद्दशगुणं ज्ञेय रविसंक्रमणे बुधाः ।६
विषुवे तद्दशगुणमयने तद्दश स्मृतम् ।
तद्दश मृगसंक्रांतौ तच्चन्द्रग्रहणे दश ।७

ऋषि बोले—हे सूतजी ! पूजा के योग्य देश काल कहिये । आप ज्ञाता हैं । सूतजी ने कहा—देवयज्ञादि कर्म में शुद्ध गृह फलदायक है । ।१। उससे दशगुणा गौओं के स्थान में, उससे भी दशगुणा जल के स्थान में और उससे भी दशगुणा बेल, तुलसी और पीपल के वृक्ष के नीचे है । उससे दशगुणा देवालय में, उससे दशगुणा तीर्थ के तट पर, उससे दशगुणा नदी तथा उससे भी दशगुणा फल तीर्थ नदी के तट पर है ।३। उससे दशगुणा फल सप्त गङ्गा के किनारे होता है । गङ्गा, गोदावरी, कावेरी, ताम्रपर्णी, सिन्धु, सरयू आदि सप्तगंगा कही जाती हैं, उससे दशगुणा फल सागर और उससे भी दशगुणा फल पर्वताग्र में पूजन करने से होता है ।४। शुद्धात्मा होकर पवित्र दिन में पूजन पुण्य फल का दायक है । इससे दशगुणा फल संक्रान्ति के दिन पूजन करने से होता है ।६। तुला और मेष की संक्रान्ति में उससे दशगुणा, अयन में उससे दशगुणा तथा चन्द्र-ग्रहण में उससे दशगुणा फल होता है ।७।

ततश्च सूर्यग्रहणे पूर्णं कालोत्तमे विदुः ।
जगद्रूपस्य सूर्यस्य विषयोगाश्च रोदनम् ।८
अतस्तद्विषशात्यर्थं स्नानदानजपांश्चरेत् ।

विषशात्यर्थं कालत्वात्सकालः पुण्यदः स्मृतः ।९
जन्मर्क्षे च व्रतांते च सूर्यरागोपमं विदुः ।
महतां संगकालश्च कोट्यर्कग्रहणं विदुः ।१०
तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठा योगिनो यतयस्तथा ।
पूजायाः पात्रमेते हि पापसंक्षयकारणम् ।११
चतुर्विंशतिलक्षं वा गायत्र्या जपसंयुतः ।
ब्राह्मणस्तु भवेत्पात्रं संपूर्णफलभोगदम् ।१२
पतनात्त्रायत इति शास्त्रे प्रयुज्यते ।
दातुश्च पातकात्त्राणात्पात्रमित्यभिधीयते ।१३
गयकं त्रायते पातादगायत्रीत्युच्यते हि सा ।
तथाऽर्थहीनो लोकेऽस्मिन्परस्यार्थं न यच्छति ।१४

इससे दशगुणा फल सूर्य-ग्रहण में होता है, यह श्रेष्ठ समय है। विश्वरूप सूर्य के अन्धकारमय हो जाने से यह समय रोग प्रदायक है ।८। इसलिये उसका विष शान्त करने के लिये स्नान, दान करे। विष की शान्ति करने वाला होने से इस समय को पुण्यप्रद कहा है ।९। जन्म, नक्षत्र और व्रत के अन्त में दान का फल सूर्यग्रहण के समान है और संगति का फल करोड़ सूर्य के तुल्य समझना चाहिए ।१०। तपोनिष्ठ एवं ज्ञान में निष्ठा वाले योगी और यती पूजनीय हैं, इनका सत्कार करने से पापों का नाश होता है ।११। अथवा जिस ब्राह्मण ने चौबीस लाख गायत्री का जप किया हो वह ब्राह्मण उसका उपयुक्त पात्र होने से पूर्ण प्रदान करने वाला है ।१२। शास्त्र के पतन से रक्षा करने वाले को पात्र कहा है। दान दाता की पापों से रक्षा करने वाला होने से वह पात्र है ।१३। गायत्री इसलिये कही गयी है कि वह गान करने वाले की उसी प्रकार रक्षा करती है, जिस प्रकार धनहीन किसी को धन नहीं देता ।१४।

अथं वानिह यो लोके परस्यार्थं प्रयच्छति ।
स्वयं शुद्धो हि पूतात्मा नरान्संत्रातुमर्हति ।१५
गायत्रीजपशुद्धो हि शुद्धब्राह्मण उच्यते ।
तस्माद्दाने जपे होमे पूजयां सर्वकर्मणि ।१६

दानं कर्तुं तथा त्रातुं पात्रत्वं ब्राह्मणोऽर्हति ।
अन्नस्य क्षुधितं पात्रं नारीनरमयात्मकम् ।१७

तथा जो धनवान है, वह धन देने में समर्थ है। इसी प्रकार जो स्वयं पवित्र है, वही अपवित्रता से दूसरे की रक्षा कर सकता है ।१५। गायत्री के जप से शुद्ध हुआ ब्राह्मण ही पवित्र है, इसलिए दान, जप, हवन, पूजन आदि सभी कार्यों में ।१६। दान लेने और रक्षा करने का पात्र ब्राह्मण ही है तथा अन्न दान का पात्र जो भूखा हो, वह स्त्री या पुरुष कोई भी हो, वही है ।१७।

प्रणव-पंचाक्षर मंत्र का माहात्म्य

प्रो हि प्रकृतिजातस्य संसारस्य महोदधेः ।
नवं नावांवारमिति प्रणववै विदुर्बुधाः ।१
प्रः प्रपंचो न नास्ति वो युष्माकं प्रणवं विदुः ।
प्रकर्षेण ननेत्रस्मान्मोक्षं वः प्रणवं विदुः ।२
स्वजापकानां योगिनां स्वमन्त्रपूजकस्य च ।
सर्वकर्मक्षयं कृत्वा दिव्यज्ञानं तु नूतनम् ।३
तमेव मायारहितं नूतनं परिचक्षते ।
प्रकर्षेण महात्मानं नवं शुद्धस्वरूपकम् ।४
नूतनं वै करोतीति प्रणवं तं विदुर्बुधाः ।
प्रणवं द्विविधं प्रोक्तं सूक्ष्मस्थूलविभेदतः ।५
सूक्ष्ममेकाक्षरं विद्यात्स्थूलं पञ्चाक्षरं विदुः ।
सूक्ष्ममव्यक्तपंचार्णं सुव्यक्तार्णं तथेतरत् ।६
जीवन्मुक्तस्य सूक्ष्मं हि सर्वसारं हि तस्य हि ।
मन्त्रेणार्थानुसन्धानं स्वदेहविलयावधि ।७

सूतजी बोले—प्रणव का अर्थ कहता हूँ। प्रकृति द्वारा प्रकट इस संसार से तारने के लिए नौका रूप होने के कारण वह प्रणव है ।१। 'प्र' से प्रपञ्च, 'न' से नहीं और 'व' से तुम में अर्थात् आत्मा में प्रपञ्च नहीं है, यह अर्थ समझो। अथवा प्रकृष्टता से जप करने वाले को मोक्ष-दाता होने से इसे प्रणव कहा गया है ।२। अपने जप करने वाले जापकों

तथा मन्त्र पूजकों के कर्मों को क्षीण करके दिव्य ज्ञान देने वाला होने से प्रणव कहा गया ।३। माया-रहित होने ये प्रणव तूतन भी कहलाता है । प्रकृष्टता से यह महात्मा और नवीन स्वरूप वाला बना देता है ।४। तथा नवीन कर देने वाला होने से पण्डित-जन इसे प्रणव कहते हैं । इसके स्थूल एवं सूक्ष्म भेद वाले दो प्रकार कहे गये हैं ।५। एकाक्षर प्रणव सूक्ष्म और पञ्चाक्षर स्थूल है । सूक्ष्म-स्वरूप अव्यक्त और पञ्चाक्षर वाला व्यक्त माना गया है ।६। जीवन्मुक्त के लिए सबका सार सूक्ष्म स्वरूप ही है, यही उसके लिए हितकारी है । मन्त्र के अनुसन्धान और देहान्त में देह में ही लीन करना सूक्ष्म उपासना है ।७।

षट्त्रिंशत्कोटिजापी तु निश्चयं योग माप्नुयात् ।
सूक्ष्मं च द्विविध ज्ञेय ह्रस्व दीर्घविभेदतः ।८
अकाराश्च उकारश्च मकारश्च ततः परम् ।
बिदुनादयुत तद्धि शब्दकालकलान्वितम् ।९
दीर्घप्रणवमेवं हि योगिनामेव हृदगतम् ।
मकारं तन्त्रितत्वं ह्रस्वप्रणव उच्यते ।१०
शिवः शक्तिस्तयोरैक्यं मकारं तु त्रिकात्मकम् ।
ह्रस्वमेवं हि जाप्यं स्यात्सर्वपापक्षयैषिणाम् ।११
भूवायुकनकार्णोद्यो: शब्दाद्याश्च तथा दश ।
आशान्वये दश पुनः प्रवृत्ता इति कथ्यते ।१२
ह्रस्वमेव प्रवृत्तानां निवृत्तानां तु दीर्घकम् ।
व्याहृत्यादौ त मन्त्रादौ कामं शब्दकलायुतम् ।१३
वेदादौ च प्रयोज्यं स्यांद्वंदने संध्ययोरपि ।
नवकोटिजषाञ्जप्त्वा संशुद्धः पुरुषो भवेत् ।१४

छत्तीस कोटि मन्त्र जप वाला पुरुष योगी बन जाता है । सूक्ष्म के भी दो भेद कहे हैं—ह्रस्व और दीर्घ ।८। अकार, उकार, मकार तथा बिन्दु नाद सहित, जिसमें अर्द्धचन्द्र बिन्दु होती है, वर्ण और मात्रा नहीं होते तथा शब्द, काल और कला से युक्त होता है ।९। 'अउम्' केवल इन तीन अक्षरों को दीर्घ प्रणव कहते हैं। यह योगियों के हृदय में बसता

है तथा 'आउम्' इन अक्षरों का ह्रस्य प्रणव कहा गया है ।१०। शिव और शक्ति का एकाकार होने से 'मकार' तीनों तत्वों का स्वरूप है । जो मनुष्य सब पापों को दूर करने की कामना करते हों, उन्हें ह्रस्व प्रणव का जप करना चाहिए ।११। पृथिवी, वायु, तेज, जल, आकाश और शब्द आदि दश दिशाओं का सम्बन्ध होने से दश पुरुष प्रवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त कहे जाते हैं । शब्दादि विषयों से युक्त जीव संसार चक्र में पड़े रहते और इससे भिन्न निवृत्त कहे जाते हैं ।१२। जो संसार में प्रवृत्त हैं, उनको प्रणव का जप तथा निवृत्त की कामना वालों को दीर्घ प्रणव का जप करना चाहिये ।१३। वेद के प्रारम्भ में ओंकार का ही प्रथम प्रयोग करे, दोनों सन्ध्या कालों की वन्दना में भी ओंकार का प्रयोग कहा है । नौ करोड़ जप से पुरुष शुद्ध हो जाता है ।१४।

पुनश्च नवकोट्या तु पृथिवीजयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोट्या तु ह्यपां जयमवाप्नुयात् ।१५
पुनश्च नवकोट्या तु तेजसां जयमाप्नुयात् ।
पुनश्च नवकोट्या तु वायोजयमवाप्नुयात् ।
अकाशजयमाप्नोति नवकोटिजपेन वे ।१६
ग्रन्थादीनां क्रमेणैव नवकोटिजपेन वै ।
अहङ्कारस्य च पुनर्नवकोटिजपेन वै ।१७
सहस्रमन्त्रजप्तेन नित्तशुद्धो भवेत्पुमान् ।
ततः परं स्वसिद्ध्यर्थं जपो भवति हि द्विजाः ।१८
एवमष्टोत्तरशतकोटिजप्तेन वै पुनः ।
प्रणवेन प्रबुद्धस्तु शुद्धयोगमवाप्नुयात् ।१९
शुद्धयोगेन संयुक्तो जीवन्मुक्तो न सशयः ।
सदा जपन्सदा ध्यायंछिव प्रणवरूपिणम् ।२०
समाधिस्थो महायोगी शिव एव न संशयः ।
ऋषिच्छन्दो देवतादि न्यस्य देहै पुनर्जपेत् ।२१

तत्पश्चात् नौ करोड़ प्रणव का पुनः जप करने से पृथिवी पर विजय प्राप्त होती है। उसके पश्चात् नौ करोड़ और जप करने से जल पर अधि-

कार होता है ।१५। उसके उपरान्त नौ करोड़ जप से तेज पर और पुनः नौ करोड़ जप से वायु को जीता जाता है। फिर नौ करोड़ जप करने से आकाश मण्डल पर विजय होती है ।१६। फिर क्रमपूर्वक नौ करोड़ प्रणव-जप करने से गन्धादि पर तथा अहङ्कार पर जीत होती है ।१७। नित्यप्रति एक हजार जप करने से मनुष्य शुद्ध रहता है । हे विप्रो ! आत्म-ज्ञान की सिद्धि के लिए भी प्रणव का जप किया जाता है ।१८। इस प्रकार एक सौ आठ करोड़ जप करने से मनुष्य ओंकार से प्रबुद्ध हो जाता और उसे शुद्ध योग की प्राप्ति होती है ।१९। मुद्ध की प्राप्ति होने पर जीवन्मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं है । प्रणव रूप शङ्कर का सदा जप तथा ध्यान करना चाहिये ।२०। समाधि स्थित होकर महाशिव स्वरूप हो जाता है इसमें संशय नहीं । ऋषि छन्द देवता आदि का न्यास करके ही जप का आरम्भ करे ।२१।

प्रणवं मातृकायुक्तं देहे न्यस्य ऋषिर्भवेत् ।
दशमातृषडध्वादि सर्वं न्यासफलं लभेत् ।२२
प्रवृत्तानां च मिश्राणां स्थूलप्रणवमिष्यते ।
क्रियातपोजपैर्युक्तास्त्रिविधाः शिवयोगिनः ।२३
धनादिविभिवैश्चैव कराद्यगैर्नमादिभिः ।
क्रियया पूजया युक्तः क्रियायोगीति कथ्यते ।२४
पूजायुक्तश्च मितभुग्बाह्यैन्द्रियजपान्वितः ।
परद्रोहादिरहितस्तपोयोगी त कथ्यते ।२५
एतैर्युक्तः सदा शुद्धः सर्वकामादिवर्जितः ।
सदा जपपरः शांतो जपयोगीति तं विदुः ।२६
जपयोगमथो वक्ष्ये गदतः शृणुत द्विजाः ।
तपः कर्तुं जपः प्रोक्तो यज्जपन्परिमार्जते ।२७
शिवनाम नमः पूर्वं चतुर्थ्यां पंचतत्वकम् ।
स्थूलप्रणबस्वरूपं हि मिवपंचाक्षरं द्विजाः ।२८

'अइउ' अक्षर एवं मात्रा प्रणव का अंग न्यास करने पर ऋषि होता है, 'अइउ' आदि दश मात्रा और छै अध्वमार्ग आदि से सम्पूर्ण न्यास

का फल होता है ।२२। संसार में प्रवृत्त या प्रवृत्ति दोनों को ही स्थूल प्रणव का जप करे । क्रिया, तप और जप करने वाले शिव के योगी तीन प्रकार के कहे हैं ।२३। धनादि ऐश्वर्य और कर आदि अंगों के द्वारा सेवा तथा नमस्कार आदि क्रियाओं से युक्त पूजन करने वाले क्रिया-योगी कहे जाते हैं ।२४। पूजायुक्त भोजन वाले तथा वाह्य-इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले तथा द्रोह आदि विकारों से परे रहने वाले तप-योगी कहे गये हैं ।२५। उपरोक्त लक्षणों से युक्त, सर्वदा शुद्ध, कामनाओं से परे निरन्तर जपशील तथा शान्त चित्त वालों को जप-योगी कहा जाता है ।२६। हे विप्रो ! अब जप-योग के लक्षण सुनो—तप करने वालों के लिए जप करने का विधान है । उस जप के कारण उसके पाप क्षीण हो जाते हैं ।२७। 'नमः शिवाय' इस चतुर्थ्यन्त पद वाले पञ्चतत्वात्मक मन्त्र का जप करना चाहिए । स्थूल प्रणव स्वरूप ही शिवजी का पञ्चाक्षर रूप कहा गया है ।२८।

पञ्चाक्षर जपेनैव सर्वसिद्धिं लभेन्नरः ।
प्रणवेनादिसयुक्तं सदा पञ्चाक्षरं जपेत् ।२९
गुरुपदेशं संगम्य सुखवासे सुभूतले ।
पूर्वपक्षे समारभ्य कृष्णभूतविधि द्विजाः ।३०
माघं भाद्रं विशिष्टं तु सर्वकालोत्तमोत्तमम् ।
एकवारं मिताशी तु वाग्यतो नियतेन्द्रियः ।३१
स्वस्य राजपितृणां च शुश्रूषणं च नित्यशः ।
सहस्रजपमात्रेण भवेच्छुद्धोऽन्यथा ऋणी ।३२
पञ्चाक्षरं पञ्चलक्षं जपेच्छिवमनुस्मरन् ।
पद्मासनस्थं शिवदं गगाचन्द्रकलान्वितम् ।३३
वामोषस्थितशक्त्या च विराजन्तं महागणैः ।
मृगकङ्कधरं देवं वरदाभयपाणिकम् ।३४
सदानुग्रहकर्त्तारं सदाशिवमनुस्मरन् ।
सम्पूज्य मनसा पूर्वं हृदि वा सूर्यमण्डले ।३५

पञ्चाक्षर के जप से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है, इसके आदि में 'ओंकार' लगाकर पञ्चाक्षर मन्त्र का ही सदा जप कहना चाहिये ।२९। गुरु से आदेश लेकर उत्तम वस्त्र धारण कर पृथिवी में बैठकर शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी को आरम्भ कर कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तक जप करना चाहिये ।३०। हे विप्रो ! माघ और भादौं यह दो महीने इसके लिये सर्व श्रेष्ठ हैं। एक बार भोजन करे, जितेन्द्रिय रहे और मौन का अवलम्बन करे ।३१। अपने पालनकर्त्ता और पितरों की नित्यप्रति सुश्रूषा करे। एक हजार जप करने से शुद्धि होती है, अन्यथा उऋण नहीं हो पाता। ।३२। शिवजी के स्मरण-पूर्वक पाँच लाख पञ्चाक्षर मन्त्र जपना चाहिये। पद्मासन पर स्थित तथा कल्याण-दायिनी गंगा और चन्द्रकला से युक्त हो ।३३। वाम उरु पर स्थित, शक्ति और गुणों से युक्त, मृगटङ्क धारण किये, देवताओं को वर देने में समर्थ तथा अभय दान देने वाले वरद-हस्त से संयुक्त ।३४। सदैव अनुग्रह करने वाले सदाशिव का स्मरण करे। प्रथम शिवजी का मानसिक पूजन हृदय अथवा सूर्यमण्डल में करना चाहिये ।३५।

जपेत्पंचाक्षरीं विद्यां प्राङ्मुखः शुद्धकर्मकृत ।
प्रातः कृष्णचतुर्दश्यां नित्यकर्म समाप्य च ।३६
मनोरमे शुचौ देशे नियतः शुद्धमानसः ।
पंचाक्षरस्य मन्त्रस्य सहस्रं द्वादशं जपेत् ।३५
मुखांतं च स्वसूत्रेण कृत्वा होमं समाचरेत् ।
दशैकं व शतैकं वा सहस्रै कमथापि वा ।३८
कापिलेन घृतेनैव जुहुयात्स्वयमेव हि ।
कारयेच्छिवभक्तैर्वाप्यष्टोत्तरशतं बुधः ।३९
पुरश्चरणमेवं तु कृत्वा मन्त्री भवेन्नरः ।
पुनश्च पंचलक्षेण सर्वपापक्षयो भवेत् ।४०
पुनश्च पंचलक्षेण सारूप्यैश्वर्यमाप्नुनात् ।
आहुत्य शतलक्षेण साक्षाद्ब्रह्मसमो भवेत् ।४१

पूर्व दिशा की ओर मुख करके शुद्ध कर्म की इच्छा से पञ्चाक्षरी विद्या

का जप करना चाहिए। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के प्रातःकाल नित्य कर्म समाप्त करे ।३६। फिर मनोरम पवित्र देश में नियमपूर्वक शुद्ध मन करके पञ्चाक्षर मन्त्र का बारह हजार की संख्या में जप करना चाहिए । ।३७। अग्निमुख पर्यन्त अपने सूत्रों के अनुसार हवन करे तथा दश या एक सौ अथवा एक हजार आहुति अग्नि में स्वयं दे। आहुति के लिए घृत कपिला गऊ का लेना चाहिए अथवा शिवभक्तों से एक सौ आठ आहुति दिलवानी चाहिये ।।३८-३९।। पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्र सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध होने पर पाँच लाख जप करने से सभी पाप क्षीण हो जाते हैं ।४०। फिर पाँच लाख जप करने से सारूप्य का ऐश्वर्य प्राप्त होता है तथा एक करोड़ मन्त्र जपने से मनुष्य साक्षात् ब्रह्म के समान हो जाता है ।४१।

यस्य सन्दशन साध्य कर्मध्यानादिभिः क्रमात् ।
नित्यादिकर्मयजनाच्छिवकर्ममतिभवेत् ।४२
क्रियादिशिवकर्मभ्यः शिवज्ञान प्रसाधयेत् ।
तद्दर्शनगताः सर्वेमुक्ता एव न संशयः ।४३
मुक्तिरात्मस्वरूपेण स्वात्मारामत्वमेव हि ।
क्रियातपोजपज्ञानध्यानधर्मेषु सुस्थितः ।४४
शिवस्य दर्शनं लब्ध्वा स्वात्मारामत्वमेव हि ।
यथा रविः स्वकिरणादशुद्धिमपनेष्यति ।४५
कृपाविचक्षणः शम्भुरज्ञानमपनेष्यति ।
अज्ञानविनिवृत्तो तु शिवज्ञानं प्रवर्तत ।४६
शिवज्ञानात्मस्वरूपमात्मारामत्वमेष्यति ।
आत्मारामत्वसंसिद्धौ कृतकृत्यो भवेन्नरः ।४७
पुनश्च शतलक्षेण ब्रह्मणः पदमाप्नुयात् ।
पुनश्च शतलक्षेण विष्णोः पदमवाप्नुयात् ।४८
पुनश्च शतलक्षेण रुद्रस्य पदमाप्नुयात् ।
पुनश्च शतक्षेण ऐश्वर्यं पदमाप्नुयात् ।४९

परमेश्वर का दर्शन, कर्म और ध्यान आदि क्रमपूर्वक होता है, नित्य-

कर्म के साथ यजन करने से शङ्कर के कर्म में प्रीति होती है ।४२। क्रिया आदि शिव-कर्मों के द्वारा शिव के ज्ञान की सिद्ध करे । उनके दर्शन करते ही सबको मोक्ष प्राप्ति होती है ।४३। आत्म स्वरूप के अतिशय आनन्द को ही मोक्ष कहते हैं । क्रिया, तप, ज्ञान, ध्यान तथा धर्मों में उसकी स्थिति कही है ।४४। शिवजी के दर्शन मात्र से स्वात्मारामत्व की प्राप्ति उसी प्रकार हो जाती है, जैसे सूर्य अपनी रश्मियों के द्वारा अपवित्रता को नष्ट कर देते हैं ।४५। इसी प्रकार कृपा करने में विचक्षण भगवान् शङ्कर अज्ञान का क्षय करते हैं । अज्ञान नष्ट होने पर ही शिवज्ञान की प्राप्ति सम्भव है ।४६। शिवज्ञान की प्राप्ति से आत्म-स्वरूप की प्राप्ति और आत्म-स्वरूप की प्राप्ति होते ही मनुष्य सब प्रकार कृत्य-कृत्य हो जाता है ।४७। सौ लाख मन्त्र जपने से ब्रह्मपद और पुनः सौ लाख जपने से विष्णु-पद की प्राप्ति हो जाती है ।४८। फिर सौ लाख जप करने से रुद्र-पद और इसके पश्चात् सौ लाख पुनः जप करने से ऐश्वर्य-पद की प्राप्ति होती है ।४९।

पुनश्च दश कोट्या हि कारण ब्रह्मणः पदम् ।
पुनश्च दशकोट्या हि तत्पदैश्वर्यमाप्नुयात् ।५०
एवंक्रमेण विष्णवादेः पदं लब्ध्वा महौजस ।
क्रमेण तत्पदैश्वर्य लब्ध्वा चैव महात्मनः ।५१
शतकोटिमनुं जप्त्वा पंचमोत्तरमतन्द्रितः ।
शिवलोकमवाप्नोति पंचमावरणाद्बहिः ।५२
गुरुपदेशाज्जाप्यं वै ब्राह्मणानां नमोऽन्तीकम् ।
पंचाक्षरं पंचलक्षमायुष्य प्नजपेद्विधिः ।५३
स्त्रीत्वापनयनार्थं तु पंचलक्षं जपेत्पुनः ।
मन्त्रेण पुरुषो भूत्वा क्रमान्मुक्को भवेद्बुधः ।५४
क्षत्रियः पञ्चलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ।
पुनश्च पञ्चलक्षेण क्षत्रियो ब्राह्मणो भवेत् ।५५
मन्त्रसिद्धिर्जपाच्चैव क्रमान्मुक्तो भवेन्नरः ।
वैश्यस्तु पञ्चलक्षेण वैश्यत्वमपनेष्यति ।५६

दश करोड़ जप से कारण ब्रह्म की प्राप्ति होती है, तदुपरान्त दश करोड़ पुनः जप करने से तत्पद ऐश्वर्य की उपलब्धि हो जाती है ।५०। इस प्रकार क्रम पूर्वक विष्णु आदि के पद की प्राप्ति होने के पश्चात् क्रम पूर्वक ही उन महात्मा के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ।५१। फिर जितेन्द्रिय रहते हुए ही एक सौ पाँच करोड़ जप करने पर पाँच आवरण से बाहर शिवलोक की प्राप्ति हो जाती है ।५२। ब्राह्मण गुरु के आदेश से पाँच लाख जप करे । मन्त्र के अन्त में 'नमः' लगावे । इस प्रकार करने से मनुष्य की आयु वृद्धि होती है ।५३। स्त्री इसके पाँच लाख जप करने से ही पुरुष रूप को प्राप्त होकर क्रम से मोक्ष को प्राप्त होती है । उसका स्त्री भाव मिट जाता है ।५४। पाँच लाख मन्त्र जपने से क्षत्रिय क्षत्रियत्व से ऊपर उठता है तथा पुनः पाँच लाख जपने से उसे पुनर्जन्म में ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है ।५५। पुनः जप करने से मन्त्र की सिद्धि होकर मोक्ष की क्रम से प्राप्ति होती है । पाँच लाख जप करने से वैश्य, वैश्यत्व से उच्च हो जाता है ।५६।

पुनश्च पंचलक्षेण मन्त्रक्षत्रिय उच्यते ।
पुनश्च पंचलक्षेण क्षत्रत्वमपनेष्यति ।५७
पुनश्च पंचलक्षेण मन्त्र ब्राह्मण उच्यते ।
शूद्रश्चैव नमोऽन्तेन पंचविंशतिलक्षतः ।५८
मन्त्रविप्रत्वमापद्य पश्चाच्छुद्धो भवेद्द्विजः ।
नारीवाथ नरो वाथ ब्राह्मो वान्य एव वा ।५९
पूजया शिवभक्तस्य शिवः प्रीततरो भवेत् ।
शिवस्य शिवभक्तस्य भेदो नास्ति शिवो हि सः ।६०
शिवस्वरूपमन्त्रस्य धारणाच्छिव एव हि ।
शिवभक्तशरीरे हि शिवे तत्परमो भवेत् ।६१
शिवभक्ताः क्रियाः सर्वा वेदासर्वक्रियां विदुः ।
यावद्यावच्छिवमन्त्रं नेन जप्त भवेत्क्रमात् ।६२
तावद्वै शिवसान्निध्यं तस्मिन्देहे न संशयः ।
देवीलिंगं भवेद्र पं शिवभक्तस्त्रियास्तथा ।६३

फिर पाँच लाख जपने से क्षत्रियत्व प्राप्त होता और पुनः पाँच लाख जपने पर क्षत्रियत्व से भी मुक्त हो जाता है ॥५७॥ फिर पांच लाख जपने पर ब्राह्मण बन जाता है। इसी प्रकार शूद्र भी अन्त में नमः लगा कर पच्चीस लाख मन्त्र जपे ॥५८॥ तो मन्त्र ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होती है। मन्त्र के जपने से स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण अथवा कोई भी हो, सब शुद्ध हो जाते हैं ॥५९॥ शिव-भक्त का पूजन करने से शिवजी प्रसन्न होते हैं। शिवजी में और उनके भक्त में कुछ भेद नहीं है, वह शिव-स्वरूप ही है ॥६०॥ शिव-स्वरूप मन्त्र की धारणा करने से शिवरूप की प्राप्ति होती है। देह में शिव भक्ति होने से शिवजी का भक्त प्रधान शिव रूप ही होता है ॥६१॥ वेदोक्त सभी क्रियाओं से युक्त शिव-भक्त सब क्रियाओं के जानने वाले हैं, जो जितना अधिक मन्त्र जप करे उसे उतना ही अधिक सामीप्य प्राप्त होता है। शिव की भक्ति करने वाली स्त्रियाँ देवी स्वरूप को प्राप्त हो जाती हैं ॥६२-६३॥

यावन्मन्त्रं जपेद्देव्यास्तावत्सन्निध्यमस्ति हि ।
शिवं संपूजयेद्धीमान्स्वयं वै शब्दरूप भाक् ॥६४
शिवलिंगं शिवं मत्वा स्वात्मान शक्तिरूपकम् ।
शक्तिलिंगं च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम् ॥६५
शिवलिंगं नादरूपं बिन्दुरूपं च शक्तिकम् ।
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिंगकम् ॥६६

वे जितना अधिक जप करती हैं, भगवती की उतनी ही अधिक निकटता उन्हें प्राप्त होती है। जो मेधावी-जन शिव-पूजा करते हैं वे शब्द के स्वयं भागी होते हैं ॥६४॥ शिवलिंग को शिव रूप और आत्मा को शक्ति रूप मानें, शक्ति-लिंग को देवी और अपने को शिव-स्वरूप समझे ॥६५॥ शिवलिंग को नाम रूप और शक्ति को बिन्दु रूप आकारादि युक्त प्रधान भूत ओंकार के निकट भाव से परस्पर लिंग शक्ति समझे ॥६६॥

॥ बन्धमोक्षस्वरूप शिवलिंग-माहात्म्य ॥

बंधमोक्षस्वरूपं हि ब्रूहि सर्वार्थवित्तम ।
बंधं मोक्षं तथोपायं वक्ष्येऽहं शृणुतादरात् ॥१

प्रकृत्याद्यष्टबंधेन बद्धो जीवः स उच्यते ।
प्रकृत्याद्यष्टबंधेन निर्मुक्तो मुक्त उच्यते ॥२
प्रकृत्यादिवशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः ।
बद्धजीवस्तु निर्मुक्तो मुक्तजीवः स कथ्यते ॥३
प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरहंकारो गुणात्मकः ।
पञ्चतन्मात्रमित्येतत्प्रकृत्याद्यष्टकं विदः ॥
प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते ।
पुनश्च कर्मजो देहो जन्मकर्म पुनः पुनः ॥५
शरीरं त्रिविधं ज्ञेयं स्थूलं सूक्ष्मं च कारणम् ।
स्थूलं व्यापारदं प्रोक्तं सूक्ष्ममिंद्रियभोगदम् ॥६
कारणं त्वात्मभोगार्थं जीवकर्मानुरूपतः ।
सुखं दुःखं पुण्यपापैः कर्मभिः फलमश्नुते ॥७

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आप सर्वार्थ ज्ञाता हैं । हमारे प्रतिबन्ध और मोक्ष का स्वरूप कहें । सूतजी ने कहा—मैं बंध और मोक्ष के उपाय कहता हूँ, आदरपूर्वक सुनिये ॥१॥ प्रकृति आदि आठ बंधनों से बंधन के कारण रूप आत्मा को जीव कहते हैं तथा उन आठ बंधनों से छुटकारे को ही मोक्ष कहा है ॥२॥ प्रकृति आदि को वश में कर लेना ही मोक्ष है । बंधन में पड़ा 'जीव' तथा उनसे मुक्त हुए को ही मुक्त कहते हैं ॥३॥ प्रकृति के आगे बुद्धि और बुद्धि के आगे गुणात्मक अहंकार और उसके साथ ही पंचतन्मात्राएँ यह सब मिलकर आठ प्रकृति है ॥४॥',इन्हीं प्रकृति आदि आठ बंधनों से देह से किया जाता है, वह कर्म है । कर्म से पुनः देह हैं, इसी प्रकार जन्म और कर्म का चक्र निरन्तर चलता रहता है ॥५॥ स्थूल, सूक्ष्म और कारण ये तीन प्रकार के देह हैं । 'स्थूल' व्यापार वाला और 'सूक्ष्म' इन्द्रिय के भोग वाला है ॥६॥ तीसरा 'कारण' देह है जो जीव के कर्मानुसार आत्मा का भोग करने के निमित्त है, पाप-पुण्य रूप कर्मों से ही सुख-दुःख की प्राप्ति है ॥७॥

तस्माद्धि कर्मरज्ज्वा हि बद्धो जीवः पुनः पुनः ।
शरीरत्रयकर्मभ्यां चक्रवद्भ्राम्यते सदा ॥८

चक्रभ्रमनिवृत्त्यर्थं चक्रकर्तारमीडयेत् ।
प्रकृत्यादि महाचक्रं प्रकृते परतः शिवः ॥९
चक्रकर्ता महेशो हि प्रकृतेः परतो यतः ।
पिबति वाथ वमति जीवन्बालो जलं यथा ॥१०
शिवस्तथा प्रकृत्यादि वशीकृत्याधितिष्ठति ।
सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छिव इति स्मृतः ।
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निःस्पृहः ॥११
सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतंत्रता नित्यलुप्तशक्तिः ।
अनंतशक्तिश्च महेश्वरस्य यन्मानसैश्वर्यमवैति वेद ॥१२
अतः शिवप्रसादेन प्रकृत्यादि वशं भवेत् ।
शिवप्रसादलाभार्थं शिवमेव प्रपूजयत् ॥१३

इस प्रकार यह जीव कर्म रूप रस्सा से बारम्बार बंधकर तीन प्रकार के शरीरों से युक्त होता हुआ चक्र के समान घूमता रहता है ॥८॥ चक्र के घूमने को शान्त करने के लिये चक्रकर्त्ता की पूजा करे । प्रकृति आदि आठ महाचक्रों से भगवान् शंकर परे हैं ॥९॥ प्रकृति से परे वे महेश ही चक्रकर्त्ता हैं, जैसे कि वृक्षों के थामले जल को पीकर उसे वृक्षों में वमन कर देते हैं ॥१०॥ इसी प्रकार प्रकृति आदि को वश में करके शिवजी स्थित हैं । सबको वशीभूत करने के कारण उन्हें 'शिव' कहते हैं । वही सर्वज्ञ, परिपूर्ण तथा निस्पृह हैं ॥११॥ अपनी सर्वज्ञाता के कारण वे तृप्त एवं अनादि बोध हैं तथा स्वतन्त्रता से जागृत शक्ति है । वे अनन्त शक्ति वाले हैं । वेद उनके मन के षड्गुणैश्वर्य का पूर्ण ज्ञाता है ॥१२॥ इसलिये शिवजी के प्रसाद से ही प्रकृति आदि को वश में किया जाता है । उनकी प्रसन्नता के लिये उनका पूजन करना ही श्रेयस्कर हैं ॥१३॥

त्रिपुंड्रं सजलं भस्म धृत्वा पूजां करोति यः ।
शिवपूजाफलं सांगं तस्यैव हि सुनिश्चितम् ॥१४
भस्म वै शिवमन्त्रेण धृत्वा ह्यत्याश्रमी भवेत् ।
शिवाश्रमीति संप्रोक्तः शिवैकपरमो यतः ॥१५
शिवव्रतैकनिष्ठस्य नाशौचं न च सूतकम् ।

ललाटेऽग्रे सितं भस्म तिलकं धारयेन्मृदा ।।१६
स्वहस्ताद्गुरुहस्ताद्वा शिवभक्तस्य लक्षणम् ।
गुणान्रुंधे इति प्रोक्तो गुरुशब्दस्य विग्रहः ।।१७
सविकारान्राजसादीन्गुणान्रुंधे व्यपोहति ।
गुणातीतः परशिवो गुरुरूपं समाश्रितः ।।१८
गुणत्रयं व्यपोह्याग्रे शिवं बोधयतीति सः ।
विश्वस्तानां तु शिष्याणां गुरुरित्यभिधीयते ।।१९
तस्माद्गुरुशरीरं तु गुरुर्लिगं भवेद्बुधः ।
गुरुलिगस्य पूजा तु पूजा गुरुशुश्रूषणं भवेत् ।।२१
श्रुतं करोति शुश्रूषा कायेन मनसा गिरा ।
उक्तं यद्गुरुणा पूर्वं शक्यं वाऽशक्यमेव वा ।।२१

जल युक्त भस्म से त्रिपुण्ड धारण कर शिवजी का पूजन करने वाले को निःसंदेह सम्पूर्ण फल मिलता है ।।१४।। शिवमंत्र से पूरित भस्म को धारण करने वाला श्रेष्ठ आश्रमी होता है और शिव-परायण होने के कारण शिवाश्रमी कहा जाता है ।।१५।। शिवव्रत में जिसकी निष्ठा है, उसे किसी प्रकार का अशौच या सूतक नहीं लगता । ललाट के अग्रभाग में श्वेतभस्म एवं मृत्तिका का तिलक लगाना चाहिये ।।१६।। तिलक अपने हाथ से या गुरु के हाथ से लगवावे,यह शिवभक्त का लक्षण है । शिष्य में अपने गुणों को आरोपित करने वाले को ही गुरु कहा गया है ।।१७।। अथवा विकार रहित राजस गुणों को दूर करने वाले गुणतीत परम शिव ही गु रूप हैं। क्योंकि गुरु को शिव रूप ही कहा गया है ।।१८।। अथवा विश्वास पात्र शिष्य के तीनों गुणों को क्षीण करके जो शिवजी का बोध करावे, उसी का नाम गुरु है ।।१९।। इसलिए विद्वान् गुरु का देह पूज्य लिंग है तथा गुरु लिंग का पूजन ही सच्ची गुरु सेवा है ।।२०।। मन, वचन और कर्म से गुरु सेवा करने वाले को शास्त्र की प्राप्ति होती है । गुरु का जो कुछ उपदेश शक्य या अशक्य कैसा भी हो, उसे माने ।।२१।।

करोत्येव हि पूतात्मा प्राणैरपि धनैरपि ।
तस्माद्धि शासने योग्यः शिष्य इत्यभिधीयते ।२२

शरीराद्यर्थकं सर्वं गुरोर्गत्वा सुशिष्यकः ।
अग्रपाकं निवेद्याग्रै भुंजीयाद्गुर्वनुज्ञया ॥२३
शिष्यः पुत्र इति प्रोक्तः सदा शिष्यत्वयोगतः ।
जिह्वालिंगान्मन्त्रशुक्रं कर्णयोनौ निषिच्य वै ॥२४
जातः पुत्रो मंत्रपुत्रः पितरं पूजयेद्गुरुम् ।
निमज्जयति पुत्रं वै संसारे जनकः पिता ॥२५
संतारयति संसाराद्गुरुर्वै बोधकः पिता ।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा पितरं गुरुमर्चयेत् ॥२६
अंगशुश्रूषया चापि धराद्यैः स्वार्जितैर्गुरुम् ।
पादादिकेशपर्यंतं लिंगान्यंगानि यद्गुरोः ॥२७
धनरूपैः पादुकाद्यैः पाद संग्रहणादिभिः ।
स्नानाभिषेकभिनैवेद्यै भोजनैश्च प्रपूजयेत् ॥२८

प्राण या धन के द्वारा गुरु का आदेश संपादन करने वाला पवित्र आत्मा हो जाता है, इसलिए शासन के योग्य को ही शिष्य कहा गया है ॥२२॥ श्रेष्ठ शिष्य शरीर आदि सब कुछ गुरु के समीप प्रदान करके भोजन की सामग्री प्रथम गुरु को निवेदन करे और फिर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे ॥२३॥ शिष्य सदैव शिष्यत्व के योग्य होने से पुत्र ही है। जैसे जिह्वा रूपी इन्द्रिय से मंत्र रूप बीज कर्ण रूप गुहा में प्रविष्ट होने से इसकी उत्पत्ति होती है। इसी कारण इसे मंत्र-पुत्र कहा गया है। इसलिए शिष्य गुरु रूप पिता की सदा पूजा करे। उत्पन्न करने वाला पिता पुत्र को संसार में प्रत्यक्ष करता है ॥२४-२५॥ परन्तु ज्ञान देने वाला संसार से पार लगा देता है। इस प्रकार दोनों का भेद जान कर गुरु रूप पिता का विशेष पूजन करे ॥२६॥ अपने उपार्जित धनों से गुरु सेवा करे। चरण से शिर के केश पर्यन्त गुरु का सम्पूर्ण शरीर शिव लिंग के समान है ॥२७॥ उनकी धन रूप से पादुकादि से, चरण दाबने से, अभिषेक और नैवेद्य से तथा भोजनादि से सत्कार करे ॥२८॥

गुरुपूजैव पूजा स्याच्छिवस्य परमात्मनः ।
गुरुशेषं तु यत्सर्वमात्मशुद्धिकरं भवेत् ॥२९

गुरोः शेषः शिवोच्छिष्टजलमन्नादिनिर्मितम् ।
शिष्याणां शिवभक्तानां ग्राह्यं भोज्यं भवेद्द्विजाः ॥३०
गुर्वनुज्ञाविरहितं चोरवत्सकलं भवेत् ।
गुरोरपि विशेषज्ञं यत्नाद् गृह्णीत वै गुरुम् ॥३१
अज्ञानमोचनं साध्य विशेषज्ञो हि मोचकः ।
आदौ च विघ्नशमनं कर्तव्यं कर्मपूर्तये ॥३२
निर्विघ्नेन कृतं सांगं कर्म वै सफलं भवेत् ।
तस्मात्सकलमादौ विघ्नेश पूजयेद्बुधः ॥३३
सर्वबाधानिवृत्यर्थं सर्वान्देवान्यजेद्बुधः ।
ज्वरादिग्रंथिरोगाश्च बाधा ह्याध्यात्मिकी मता ॥३४
पिशाचजंबुकादीनां वल्मीकाद्युद्भवे तथा ।
अकस्मादेव गोधादिजन्तूनां पतनेऽपि च ॥३५
गृहे कच्छपसर्पस्त्रीदुर्जनाद् शनेऽपि च ।
वृक्षनारीगवादीनां प्रसूतिविषयेऽपि च ॥३६

गुरु के पूजन से ही भगवान् शिव का पूजन हो जाता है। गुरु के पूजन से शेष रहा प्रव्य आत्मा की शुद्धि करने वाला होता है ॥२९॥ जल तथा अन्नादि से निर्मित पदार्थ गुरु की पूजा से अवशिष्ट रहने पर शिवजी के उच्छिष्ट के तुल्य है, वह शिष्यों एव भक्तों को ग्रहण करना चाहिए ॥३०॥ तथा गुरु की आज्ञा के बिना जो वस्तु ग्रहण की जाती है, वह चुरायी हुई वस्तु के समान है। गुरु भी विशेष विद्वान हो, उसी को वरण करना उचित है ॥३१॥ अज्ञान को दूर करना ही गुरु का कार्य है, और विशेष ज्ञानी गुरु ही अज्ञान को दूर करने में समर्थ है। पहिले कर्म पूर्त्ति के लिये विघ्नों की शान्ति होनी चाहिये ॥३२॥ विघ्न रहित तथा पूर्ण अंग से किया गया कर्म ही सफल होता है, इसलिए सब कर्म के आदि में गणेशजी की पूजा करनी उचित है ॥३३॥ सब बाधाओं की शान्ति के हेतु ज्ञानी जन को सब देवताओं का यजन करना चाहिए। यह ज्वर, ग्रन्थि आदि सभी रोगों को दूर करने वाला है ॥३४॥ पिशाच जम्बुक आदि, वाल्मीकि आदि का उपद्रव तथा अक-

स्मात् गोधादि जन्तुओं का गिरना तथा घर में कच्छप, सर्प, स्त्री, अथवा दुर्जनों का दिखाई देना अथवा वृक्ष, नारी और गौ आदि का प्रसव दिखाई देना ॥३५-३६॥

भावि दुःखं समायाति तस्मात्ते भौतिका मताः ।
ममेध्याशनिपातश्च महामारी तथैव च ॥३७
ज्वरमारी विसूचिश्च गोमारी च मसूरिका ।
जन्मर्क्ष ग्रहसंक्रांतिग्रहयोगाः स्वराशिके ॥३८
एतादृशे समुत्पन्ने भाविदुःखस्य सूचके ।
शांतियज्ञं तु मतिमान्कुर्यात्तद्दोषशांतये ॥३९
देवालयेऽथ गोष्ठे वा चैत्ये वापि गृहांगणे ।
प्रदेशोन्नतधिष्ण्ये वै द्विहस्ते च स्वलंकृते ॥४०
भारमात्रं व्रीहिधान्यं प्रस्थाप्य परिसृत्य च ।
मध्ये विलिख्य कमलं तथा दिक्षु विलिख्य वै ॥४१
तंतुना वेष्टितं कुंभं नवगुग्गुलुधूपितम् ।
मध्ये स्थाप्य महाकुंभं तथा दिक्ष्वपि विन्यसेत ॥४२

इनके दिखाई देने से भविष्य में दुःख की संभावना जाती है। इससे यह भौतिक पाप होते हैं। अपवित्र वस्तु, वज्र का गिरना तथा महामारी, ज्वरमारी, विसूचिका, गौमारी, वसन्त रोग, जन्म नक्षत्र पर ग्रहों का हो जाना, संक्रान्ति अथवा अपनी राशि पर ग्रहयोग का होना भौतिक पाप ही हैं ॥३७-३८॥ यह सब अरिष्ट भविष्य में दुःख होने के सूचक है। बुद्धिमान को इस दोष की शान्ति के लिए शान्ति-यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए ॥३९॥ देवालय, गोष्ठ, यज्ञ स्थान, गृह अथवा आँगन में उच्च स्थान पर दो हाथ की वेदी बनाकर उसे अलंकृत करे ॥४०॥ आठ सहस्र तोले जौ, धान्य स्थापित कर फैलावे और मध्य में कमल लिखकर दिशाओं में भी कमल लिखना चाहिए ॥४१॥ सूत से लपेटे हुए नवीन घट को धूप देकर मध्य में उस महाकुम्भ की स्थापना करे तथा दिशाओं के स्थान में भी कुम्भ स्थापित करे ॥४२॥

सनालाम्रककूर्चादीन्कलशाँश्च तथाष्टसु ।
पूरयेन्मंत्र पूतेन पंचद्रव्ययुतेन हि ॥४३
प्रक्षिपेन्नव रत्नानि नीलादीन्क्रमशस्तथा ।
कर्मज्ञः च सपत्नीकामाचार्यं वगेद्बुधः ॥४४
सुवर्णप्रतिमां विष्णोरिंद्रादीनां च निक्षिपेत् ।
सशिरस्के मध्यकुंभे विष्णुमावाह्य पूजयेत् ॥४५
आगादिषु यथामन्त्रमिंद्रादीन्क्रमशो यजेत् ।
तत्तन्नाम्ना चतुर्थ्यां च नमो-तेन यथाक्रमम् ॥४६
आवाहनादिकं सर्वमाचार्येणैव कारयेत् ।
आचार्य ऋत्विजा सार्धं तन्मंत्रान्प्रजपेच्छतम् ॥४७
कुंभस्य पश्चिमे भागे जपांते होममाचरेत् ।
कोटिं लक्षं सहस्रं वा शतमष्टोत्तरं बुधाः ॥४८
एकाहं वा नवाहं वा तथा मंडलमेव वा ।
यथायोग्यं प्रकुर्वीत कालदेशानुसारतः ॥४९

नाल सहित आम की कूची आदि वस्तुओं को आठ कलशों में पंच द्रव्य अर्थात् लौंग, कंकोल, अगर, जायफल, कपूर सहित डालें तथा मन्त्र पढ़कर उसे जल से भर दें ॥४३॥ क्रम पूर्वक नील आदि नव-रत्नों को उसमें डाल दे तथा कर्म के ज्ञाता आचार्य को भार्या सहित वरण करे । उस घड़े में विष्णु और इन्द्रादि की स्वर्ण प्रतिमा डाल दे तथा पूर्ण पात्र युक्त उस मध्यम कुम्भ में भगवान् विष्णु का आह्वन तथा पूजन करे ॥४४-४५॥ इन्द्रादि देवताओं की पूर्वादि दिशाओं में मन्त्र पूर्व के क्रम से पूजा करे तथा उन-उन देवताओं के नाम चतुर्थी विभक्ति युक्त ले और अन्त में नमः लगावे ॥४६॥ आवाहनादि कृत्य आचार्य से करावे । उन विष्णु आदि देवताओं के मन्त्रों को आचार्य भी ऋत्विजों सहित सौ बार जपे ॥४७॥ जप के अन्त में कुम्भ के पश्चिम भाग में आहुति दे । एक करोड़, एक लाख, एक सहस्र या एक सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिये ॥४८॥ एक दिन नौ दिन या चालीस दिन देश काल के विचार पूर्वक यथायोग्य जप और हवन करना उचित है ॥४९॥

शमीहोमश्च शांत्यर्थे वृत्यर्थं च पलाशकम् ।
समिदन्नाज्यखैर्द्रव्यैर्नाम्ना मन्त्रेण वा हुनेत् ।।५०
प्रारम्भे यत्कृत द्रव्यं तत्क्रियांतं समाचरेत् ।
पुण्याह वाचयित्वा ते दिने संप्रोक्षयेज्जलैः ।।५१
आदित्यादीन्ग्रहानिष्ट्वा सर्वहोमांत एव हि ।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्यान्नवरत्नं यथाक्रमम् ।।५२
एवं कृतेन यज्ञेन दोषशाँतिमवाप्नुयात् ।
शांतियज्ञमिमं कुर्याद्वर्ष वर्ष तु फाल्गुने ।।५३
शिवप्रदक्षिणात्सर्व पातक नश्यति क्षणात् ।
दुःखस्य मूलं व्याधिर्हि व्याधेर्मूलं हि पातकम् ।।५३
धर्मेणैव हि पापनामपनोदनमीरितम् ।
शिवोद्देशकृतो धर्मः क्षमः पापविनोदने ।।५५
अध्यक्षं शिवधर्मेषु प्रदक्षिणमितीरितम् ।
क्रियया जपरूपं हि प्रणवं तु प्रदक्षिणम् ।।५६

शान्ति के लिए शमी का हवन, वृद्धि के लिए पलाश का हवन तथा समिध अन्न घृत के पदार्थ और नाम मन्त्र उच्चारण पूर्वक हवन करना चाहिए ।।५०।। प्रारम्भ में जो द्रव्य किया जाता है, वही क्रिया के अन्त तक करना चाहिए। पुण्याहवाचन कराने के पश्चात् अन्त में कलशों के जल से प्रोक्षण करे ।।५१।। होम के अन्त में आदित्य आदि सब देवताओं का पूजन करें। तथा ऋत्विजों को भी यथाक्रम नवरत्न आदि को दक्षिणा प्रदान करे ।।५२।। इस प्रकार यज्ञ करने से दोषों की शान्ति हो जाती है। यह शान्ति यज्ञ प्रति वर्ष फाल्गुण मास में किया जाना उचित कहा है ।।५३।। शिवजी की प्रदक्षिणा करने से क्षण भर में सभी पापों का नाश होता है। दुःख का मूल व्याधि और व्याधि का मूल पाप कहा गया है ।।५४।। धर्म से ही पाप नष्ट होते हैं, शास्त्र का ऐसा ही मत है। शिवजी के निमित्त जो धर्म किया जाता है, वही पाप को नष्ट करने में समर्थ है ।।५५।। शिव धर्मों में प्रदक्षिणा का सर्वाधिक महत्व है तथा क्रियायुक्त जप स्वरूप ओंकार को ही प्रदक्षिणा माना गया है ।।५६।।

जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम् ।
शिवस्य मायाचक्रे हि बलिपीठं तदुच्यते ।।५७
बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ।
पदे पदांतरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् ।।५८
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम् ।।
निर्गमाज्जननं प्राप्तनत्रस्त्वात्मसमर्पणम् ।।५९

जन्म और मरण को माया-चक्र कहते हैं तथा शिवजी का माया-चक्र बलि पीठ कहा जाता है ।।५७।। बलि पीठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से दो चरण चलकर बलि पीठ के समीप पहुंचे ।।५८।। नमस्कार करने को प्रदक्षिणा कहते हैं । प्रदक्षिणा फिरने को जन्म तथा नमस्कार करने को आत्म-समर्पण कहा गया है ।।५९।।

।। वैदिक पार्थिव पूजन ।।

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यत ।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ।।१
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ।।२
नैत्यिकं सकलं कामं विधायानंतरं पुमान् ।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ।।३
वेदोक्तविधिना सम्यक्संपूर्णफलसिद्धये ।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिंगमुत्तमम् ।।४
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च ।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ।।५
शुद्धप्रदेशसंभुतां मृदमाहृत्य यत्नतः ।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ।।६
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका ।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ।।७

सूतजी ने कहा—वेद ज्ञाता भक्तों को पार्थिव पूजा कहा है । वैदिक मार्ग वाली पूजा भुक्ति-मुक्ति की दाता है ।।१।। अपने सूत्र के

विधान से स्नान करके विधिवत् संध्या करे, फिर ब्रह्म-यज्ञ करके तर्पण करना चाहिये ॥१॥ फिर इस पुरुष को सम्पूर्ण नित्य कर्म करना चाहिए। पश्चात् शिवजी का स्मरण करके भस्म और रुद्राक्ष को धारण करे ॥३॥ फिर वेदोक्त विधि के द्वारा सम्पूर्ण जल की सिद्धि के लिए, परम भक्तिपूर्वक पार्थिव लिंग का पूजन करना चाहिए ॥४॥ नदी के किनारे सरोवर के किनारे, पर्वत के ऊपर, वन में, शिवालय में अथवा पवित्र देश में पार्थिव पूजा करने का विधान है ॥५॥ विप्रो ! पवित्र प्रदेश की मृत्तिका प्रयत्नपूर्वक लावे तथा सावधान होकर शिवलिंग का पूजन करे ॥६॥ ब्राह्मण में गौर, क्षत्रिय में रक्त, वैश्य में पीत तथा शूद्र में कृष्ण रंग की अथवा जैसी उपलब्ध हो सके वैसी मृत्तिका ले ॥७॥

संगृह्य मृत्तिकां लिंगनिर्माणार्थं प्रयत्नतः ।
अतीव शुभदेशे च स्थापयेत्तां मृदं शुभाम् ॥८
संशोध्य च जलेनापि पिंडीकृत्य शनैः शनैः ।
विधीयेत शुभं लिगं पार्थिवं वेदमार्गतः ॥९
ततः संपूजयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलाप्तये ।
तत्प्रकारमहं वच्मि शृणुध्वं संविधानतः ॥१०
नमः शिवायः मन्त्रेणार्चनद्रव्यं च प्रोक्षयेत् ।
भूरसीति च मंत्रेण क्षेत्रसिद्धि प्रकारयेत् ॥११
आपोऽस्मानिति मंत्रेण जलसंस्कारमाचरेत् ।
नमस्ते रुदमंत्रेण फाटिकाबंधमुच्यते ॥१२
शंभवायेति मंत्रेण क्षेत्रमुद्धि प्रकारयेत् ।
नम पूर्वेण कुर्यात्पंचामृतस्यापि प्रोक्षणम् ॥१३
नीलग्रीवाय मंत्रेण नमःपूर्वेण भक्तिमान् ।
धरेच्छंकरलिगस्य प्रतिष्ठापनमुत्तमम् ॥१४

उस मृत्तिका से यत्नपूर्वक लिंग का निर्माण करे और उसे मृत्तिका के ही अत्यन्त पवित्र स्थल में स्थापित करे ॥८॥ उनको जल योग से स्वच्छ कर धीरे-धीरे पिण्डाकार कर वेद विधि के द्वारा सुन्दर शिवलिंग का निर्माण करे ॥९॥ फिर भुक्ति-मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त उस लिंग

का यथाविधि पूजन करे, अब तुम्हारे प्रति मैं उस पूजन का विधान कहता हूँ, तुम ध्यानपूर्वक श्रवण करो ॥१०॥ 'नमः शिवाय' मन्त्र के द्वारा पूजन-सामग्री का प्रोक्षण करे और 'भूरसि' मन्त्र के द्वारा क्षेत्र की सिद्धि करनी चाहिए ॥११॥ 'आपोस्मान्' मन्त्र द्वारा जल का संस्कार करना चाहिए तथा 'नमस्ते रुद्र' इस मन्त्र के द्वारा स्फाटिक बन्ध करना उचित है ॥१२॥ 'नमः शंभवाय' मंत्र से क्षेत्र शुद्धि करनी चाहिए तथा 'नमः' पूर्वक पंचामृत का प्रोक्षण करना चाहिए ॥१३॥ भक्तिमान पुरुष को 'नमो नीलग्रीवाय' मन्त्र के द्वारा शिवलिंग की प्रतिष्ठा करनी चाहिए ॥१४॥

भक्तिस्तत एतत्ते रुद्रायेति च मंत्रतः ।
आसनं रमणीयं वै दद्याद्वैदिकमार्गकृत् ॥१५
मानो महान्तमिति च मंत्रेणावाहनं चरेत् ।
याते रुद्रेण मंत्रेण संचरेदुपवेशनम् ॥१६
मंत्रेण यामिषुमिति न्यासं कुर्य्याच्छिवस्य च ।
अध्यवोचदिति प्रेम्णाधिवास मनुनाचरेत् ॥१७
मनुनासौ जीव इति देवतान्यासमाचरेत् ।
असौ योऽवसर्पतीति चाचरेदुपसर्पणम् ॥१८
नमोऽस्तु नीलग्रीवायेति पाद्यं मनुनाहरेत् ।
अर्घ्यं च रुद्रगायत्र्याऽऽचमनं त्र्यंबकेणच ॥१९
पथः पृथिव्यामिति च पयसा स्नानमाचरेत् ।
दधिक्राव्णेति मंत्रेण दधिस्नानं च कारयेत् ॥२०
घृते स्नानं खलु घृतं घृतयावेति मंत्रतः ।
मधुवाता मधुनक्तं मधुमान्न इति त्र्यृचा ॥२१
मधुखण्डस्नपनं प्रोक्तमिति पचामृत स्मृतम् ।
अथवा पाद्यमंत्रेण स्नान पंचामृतेन च ॥२२

'एतत्ते' मन्त्र के द्वारा भक्तिभाव पूर्वक तथा वेद विधि से सुन्दर एवं रमणीय आसन प्रदान करना चाहिए ॥१५॥ 'मानो महान्त' इस मन्त्र के द्वारा आह्वान करे और 'याते रुद्र' मन्त्र के द्वारा उपवेश करना

चाहिए ॥१६॥ 'यामिषुम्' इस मन्त्र से शिवजी का न्यास करके 'अवोचदिति' मन्त्र के द्वारा प्रेम-पूर्वक आधिवासन करना चाहिए ॥१७॥ 'असौ जीव' इस मन्त्र के द्वारा देव न्यास करना तथा 'असौयोऽवसर्पतीति' मन्त्र से उपसर्पण करना चाहिए ॥१८॥ 'नमोस्तु नीलग्रीवाय' मंत्र से पाद्य स्नान करके रुद्र गायत्री से अर्घ्य देना और 'त्र्यम्बक' मंत्र से आचमन कराना चाहिए ॥१९॥ 'दधिक्राव्ण' मन्त्र से दधि स्नान करावे तथा 'घृतंयाव' मन्त्र से घृत-स्नान और 'पय पृथिव्याम्' से दुग्ध स्नान कराना चाहिए ॥२०॥ 'मधुवाता, मधुनक्तं, मधुमान्' इन मन्त्रों के द्वारा मधु और खाँड से स्नान करावे। यह पंचामृत है अथवा पाद्य मन्त्रों के द्वारा पंचामृत से स्नान कराना चाहिए ॥२१-२२॥

मानस्तोके इति प्रेम्णा मंत्रेण कटिबंधनम्।
नमो धृष्णवे इति वा उत्तरीयं च धापयेत् ॥२३
याते हेतिरिति प्रेम्णा ऋक्चतुष्केण वैदिकः।
शिवाय विधिना भक्तश्चरेद्वस्त्रसमर्पणम् ॥१४
नमः श्वभ्य इति प्रेम्णा गधं दद्याद्दता सुधीः।
नमस्तक्षभ्य इति चाक्षतान्मंत्रेण चार्पयेत् ॥२५
नमः पार्याय इति वा पुष्पं मंत्रेण चार्पयेत्।
नमः पर्ण्याय इति वा बिल्वपत्रसमर्पणम् ॥२६
नमः कपर्दिने चेति धूपं दद्याद्यथाविधि।
दीपं दद्याद्यथोक्तं तु नम आशव इत्यृचा ॥२७
नमो ज्येष्ठाय मन्त्रेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्।
मनुना त्र्यम्बकमिति पुनराचमनं स्मृतम् ॥२८

'मानस्तोके' मन्त्र से कटि बन्धन करे तथा 'नमो घृष्णवे' इससे उत्तरीय धारण करावे 'याते हेति इन चार मन्त्रों से प्रेमपूर्वक वस्त्र समर्पित करे ॥२३-२४॥ 'नमः श्वभ्यः' मन्त्र से प्रेमपूर्वक गन्ध समर्पित करे और 'नमस्तक्षभ्यः' मन्त्र से अक्षत चढ़ावे ॥२५॥ 'नमः पार्याय' मन्त्र से पुष्प भेंट करे तथा 'नम पर्ण्याय' मन्त्र से बिल्वपत्र का समर्पण करना चाहिए ॥२६॥ 'नमः कपर्दिने' इस मन्त्र से धूप-दान करे तथा

'नमः आशवे' मन्त्र से दीप दिखावे ॥२७॥ 'नमो ज्येष्ठाय' मन्त्र से नैवेद्य देकर 'त्र्यम्बकम्' मन्त्र के द्वारा आचमन कराना चाहिए ॥२८॥

इमा रुद्रायेति ऋचा कुर्यात्फलसमर्पणम् ।
नमो व्रज्यायेतिऋचा सकलं शंभवेऽर्पयेत् ॥२९
मानो महांतमिति च मानस्तोके इति ततः ।
मंत्रद्वयेनैकादशाक्षतै रुद्रान्प्रपूजयेत् ॥३०
हिरण्यगर्भ इति त्र्यृचा दक्षिणां हि समर्पयेत् ।
देवस्यत्वेति मन्त्रेण ह्यभिषेकं चरेद्बुधः ॥३१
दीपमन्त्रेण वा शंभोर्नीराजनविधिं चरेत् ।
पुष्पांजलिं चरेद्भक्त्या इमा रुद्राय च त्र्यृचा ॥३२
मानोमहान्तमिति च चरेत्प्राज्ञः प्रदक्षिणाम् ।
मानस्तोकेति मन्त्रेण साष्टांग प्रणमेत्सुधीः ॥३३
एषते इति मन्त्रेण शिवमुद्रां प्रदर्शयेत् ।
यतोयत इत्यभयां ज्ञानाख्यां त्र्यंबकेण च ॥३४
नमःसेनेति मन्त्रेण महामुद्रां प्रदर्शयेत् ।
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च नमो गोभ्य ऋचाऽनया ॥३५
पंच मुद्राः प्रदर्श्याथ शिवमंत्रजपं चरेत् ।
शतरुद्रियमन्त्रेण जपेद्वेदविचक्षणः ॥३६
ततः पंचांगपाठं च कुर्याद्वेदविचक्षणः ।
देवागात्विति मन्त्रेण कुर्याच्छंभोर्विसर्जनम् ॥३७

'इमा रुद्राय' मन्त्र से फल समर्पित करे और 'नमो व्रज्याय' मन्त्र से कलश अर्पित करे ॥२९॥ 'मानो महान्त' और 'मानस्तोके' इन मंत्रों से रुद्रों को अक्षत भेंट करे ॥३०॥ 'हिरण्य गर्भ' मन्त्र से दक्षिणा दे तथा 'देवस्यत्वो' मन्त्र से अभिषेक करे ॥३१॥ दीपमन्त्र से शिवजी का नीराजन करके 'इमारुद्राय' मन्त्र से पुष्पांजलि समर्पित करे ॥३२॥ 'मानो महान्त' मन्त्र से प्रदक्षिणा करे और 'मानस्तोके' मन्त्र से साष्टांग प्रणाम करना चाहिए ॥३३॥ 'ऐषते' मन्त्र से शिवजी को मुद्रा दर्शन करावे, 'यतोयत्' मन्त्र से तथा, 'त्र्यंबकं मन्त्र से, 'नमः सेनान्ये' मन्त्र

से महामुद्रा दिखावे एवं 'नमोगौभ्यः' मन्त्र से धेनु मुद्रा का दर्शन करावे ॥३४-३५॥ फिर पाँच मुद्रा को दिखाकर शिव मन्त्र का जप करे, वेद ज्ञाता को शत रुद्रिय मन्त्र का जप करना चाहिए ॥३६॥ फिर वेदविज्ञ को पंचांग का पाठ करना चाहिए तथा 'देवागातु' मन्त्र से शिवजी का विसर्जन करना श्रेयस्कर है ॥३७॥

॥ शिवनैवेद्यभक्षणनिर्णय और बिल्वमाहात्म्य ॥

अग्राह्यं शिवनैवेद्यमिति पूर्वं श्रुतं वचः ।
ब्रूसि तन्निर्णयं विल्वमाहात्म्यमपि सन्मुने ॥१
शृणुध्वं मुनयः सर्वे सावधानतयाऽधुना ।
सर्वं वदामि सप्रीत्या धन्या यूय शिवव्रताः ॥२
शिवभक्तः शुचिः शुद्धः सद्व्रती दृढ़निश्चयः ।
भक्षयेच्छिवनैवेद्यं त्यजेदग्राह्यभावनाम् ॥३
दृष्ट्वापि शिवनैवेद्यं यांति पापानि दूरतः ।
भक्ते तु शिवनैवेद्ये पुण्यान्यायांति कोटिशः ॥४
अलं यागसहस्रेणाप्यलं यागार्बुदैरपि ।
भक्षिते शिवनवेद्ये शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥५
यद्गृहे शिवनैद्यप्रचारोऽपि प्रजायते ।
तद्गृहं पावनं सर्वमन्यपावनकारणम् ॥६
आगतं शिवनैवेद्यं गृहत्वा शिरसा मुदा ।
भक्षणीयं प्रयत्नेन शिवस्मरणपूर्वकम् ॥७

ऋषियों ने कहा—शिवजी का नैवेद्य अग्राह्य सुना जाता है इसलिए आप उसके विषय में कहें और बिल्व का माहात्म्य भी सुनावें ॥१॥ सूतजी बोले—मुनिवरो ! तुम शिवजी के भक्त होने से धन्य हो । मैं सब वार्ता प्रीतिपूर्वक कहता हूं, ध्यान से श्रवण करो ॥२॥ शिवजी का भक्त पवित्र शुद्ध, सद्व्रती, दृढ़ निश्चयी होता है । वह शिवजी का नवेद्य भक्षण करले तथा अग्राह्य भावना का त्याग कर दे ॥३॥ शिवजी के नैवेद्य को दूर से देखकर भी पाप पलायमान कर जाते

हैं तथा उसके भक्षण करने से अनेक पुण्यों की प्राप्ति होती है ॥४॥ सहस्र और अरब यज्ञ करने से उतना क्या पुण्य है ? शिवजी का नैवेद्य भक्षण करने से उनके सायुज्य पद की प्राप्ति होती है ॥५॥ जिस गृह में शिवजी के नैवेद्य का प्रचलन है वह गृह अत्यन्त पवित्र है तथा निकट के अन्य गृहों को भी पवित्र कर देता है ॥६॥ शिवजी का नैवेद्य आता हुआ देखकर उसे शिर से ग्रहण करे और शिवजी का स्मरण करते हुए प्रयत्नपूर्वक भक्षण करे ॥७॥

आगतं शिवनैवेद्यमन्यदा ग्राह्यमित्यपि ।
विलंबे पापसंबन्धो भवत्येव हि मानवः ॥८
न यस्य शिवनैवेद्यग्रहणेच्छा प्रजायते ।
स पापिष्ठगरिष्ठः स्यान्नरकं यात्यापि ध्रुवम् ॥९
स्नापयित्वा विधानेन यो लिंगस्नपनोदकम् ।
त्रिः पिबेत्त्रिविधं पापं तस्येहाशु विनश्यति ॥१०
अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् ।
शालग्रामशिलासंगात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥११
लिंगोपरि च यद्द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः ।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिंगस्पर्शबाह्यतः ॥१२
बिल्वमूले महादेवं लिंगरूपिणमव्ययम् ।
यः पूजयति पुण्यात्मा स शिवं प्राप्नुयाद्ध्रुवम् ॥१३
बिल्वमूले जलैर्यस्तु मूर्धानमभिषिंचति ।
स सर्वतीर्थस्नातः स्यात्स एव भुवि पावनः ॥१४

जो शिव के आये हुए नैवेद्य को अग्राह्य मानकर उसके भक्षण में विलम्ब करता है ॥८॥ शिव का नैवेद्य ग्रहण करने की जिसे इच्छा नहीं होती, वह महापापी है, उसे नरक मिलता है ॥९॥ विधि सहित स्नान कराये हुए लिंग के जल को तीन बार पीने से तीनों पाप नष्ट होते हैं ॥१०॥ शिव का अग्राह्य नैवेद्य, पत्र, पुष्प, जल सब कुछ शालिग्राम शिला के स्पर्श से पवित्र हो जाता है ॥११॥ हे मुनियो ! शिवलिंग के ऊपर का द्रव्य अग्राह्य है, परन्तु जो पदार्थ लिंग स्पर्श से

पृथक् हैं, उसे पवित्र समझो ॥१२॥ लिंग-मूल में लिंग रूपी अविनाशी महादेव का पूजन जो पुण्यात्मा पुरुष करता है उसे ध्रुव कल्याण की प्राप्ति होती है ॥१३॥ जो शिवजी पर बिल्वमूल में जल चढ़ाता है, उसे सब तीर्थों में स्नान का फल एवं पवित्ररूपता मिलती है ॥१४॥

एतस्य बिल्वमूलस्याश्वाल वालमनुत्तमम् ।
जलाकुलं महादेवो दृष्ट्वा तुष्टो भवत्यलम् ॥१५
पूजयेद्बिल्वमूलं यो गन्धपुष्पादिभिनरः ।
शिवलोकमवाप्नोति संततिर्वर्धते सुखम् ॥१६
बिल्वमूले दीपमालां यः कल्पयति सादरम् ।
स तत्त्वज्ञानसंपन्नो महेशांगर्ततो भवेत् ॥१७
बिल्वशाखां समादाय हस्तेन नवपल्लवम् ।
गृहीत्वा पूजयेद्बिल्वं च पापैः प्रमुच्यते ॥१८
बिल्वमूले शिवरतं भोजयेद्यस्तु भक्तितः ।
एकं वा कोटिगुणतं तस्य पुण्यं प्रजायते ॥१९

इस बिल्वमूल के सब ओर जल से परिपूर्ण आलवाल को देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो जाते हैं ॥१५॥ जो भक्त बिल्वमूल में गन्ध पुष्पादि के द्वारा पूजन करता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती तथा सन्तान और सुख बढ़ता है ॥१६॥ जो मनुष्य बिल्वमूल में आदरपूर्वक दीपमाला की कल्पना करता है वह तत्वज्ञान से परिपूर्ण हो शिवजी के अन्तर्गत होता है ॥१७॥ बिल्व की शाखा को लेकर उससे नवीन पत्र ग्रहण कर पूजन करता है, वह सभी प्रकार के पातकों से मुक्त हो जाता है ॥१८॥ जो शिव भक्त को बिल्वमूल में भक्तिपूर्वक भोजन कराता है, उसे एक व्यक्ति को भोजन कराने में ही करोड़ को भोजन कराने का फल मिलता है ॥१९॥

॥ शिवनाम माहात्म्य ॥

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
तदेव व्यासतो ब्रूहि भस्ममाहात्म्यमुत्तमम् ॥१

तथा रुद्राक्षमाहात्म्यं नाममाहात्म्यमुत्तम् ।
त्रितयं ब्रूहि सुप्रीत्या ममानन्दय मानसम् ॥२
साधु पृष्टं भवद्भिश्च लोकानां हितकारकम् ।
भवन्तो वै महाधन्याः पवित्राः कुलभूषणाः ॥३
येषां चैव शिवः साक्षाद्दैवतं परमं शुभम् ।
सदाशिवकथा लोके वल्लभा भवतां सदा ॥४
ते धन्याश्च कृतार्थाश्च सफलं देहधारणम् ।
उद्धृतं च कुलं तेषां ये शिवं समुपासते ॥५
शिवनाम मुखे यस्य सदाशिवशिवेति च ।
पापानि न स्पृशंत्येव खदिरांगारक यथा ॥६
श्रीशिवाय नमस्तुभ्यं मुख व्याहरते यदा ।
तन्मुखं पावनं तीर्थं सर्वपापविनाशनम् ॥७

ऋषियों ने कहा—हे व्यास-शिष्य सूतजी ! आपको नमस्कार है । आप हमारे प्रति भस्म का माहात्म्य की कहिये ॥१॥ रुद्राक्ष माहात्म्य भी कहिये । यह तीनों वार्ताएँ हमारे मन की प्रसन्नता हेतु करने की कृपा करिये ॥२॥ सूतजी ने कहा—लोकहित के लिए यह आपसे अच्छा प्रश्न किया है । आप धन्य हैं तथा पवित्र कुल के भूषण हैं ॥३॥ जिनके लिये विश्व में शिवजी ही परमदेव हैं, उनको सदैव ही शिव-कथा अत्यन्त प्रिय लगती है ।।४॥ वे भक्त धन्य एवं कृतार्थ हैं, उनका देह धारण करना फलयुक्त है, जिन्होंने शिवजी की उपासना की, जिन्होंने अपने कुल का उद्धार कर दिया ॥५॥ जिसके मुख में सदैव 'शिव' नाम रहता है, उसे पाप उसी प्रकार स्पर्श नहीं करते जिस प्रकार खैर अंगार को स्पर्श नहीं कर सकता ॥६॥ 'भगवान् शंकर को नमस्कार है' जो मनुष्य इस प्रकार कहता है, उसका मुख सब पापों के नष्ट करने वाला है ॥७॥

तन्मुखं च तथा यो वै पश्यति प्रीतिमान्नरः ।
तीर्थजन्यं फलं तस्य भवतीति सुनिश्चितम् ॥८
यत्र त्रयं सदा तिष्ठेदेतच्छुभतरं द्विजाः ।
तस्य स्पर्शनमात्रेण वेणीस्नानफलं लभेत् ॥९

शिवनामविभूतिश्च तथा रुद्राक्ष एव च ।
एतत्त्रय महापुण्यं त्रिवेणीसदृशं स्मृतम् ॥१०
एतत्त्रय शरीरे च यस्य तिष्ठति नित्यशः ।
तस्यैव दर्शनं लोके दुर्लभं पापहारकम् ॥११
तद्दर्शनं तथा वेणी नोभयोरंतरं मनाक ।
एवं यो न विजानाति स पापिष्ठे न संशयः ॥१२
विभूतिर्यस्य नो भाले नांगे रुद्राक्षधारणम् ।
नास्ते शिवमयी वाणी तं त्यजेदधमं यथा ॥१३
शैव नाम यथा गङ्गा विभूतिर्यमुना मता ।
रुद्राक्षं विधिना प्रोक्ता सर्वपापविनाशिनी ॥१४

जो प्रीतियुक्त मनुष्य उसके मुख का दर्शन करे उसको तीर्थ के फल की प्राप्ति होती है ॥८॥ विप्रो ! यह मंगलमय प्राणी जहां-जहाँ स्थित होता है, उस-उस स्थान के दर्शन मात्र से ही वेणी के स्नान का फल उपलब्ध होता है ॥९॥ भगवान् शिव का नाम स्मरण, विभूति लगाना एवं रुद्राक्ष धारण करना, अत्यन्त पावन वेणी फल के समान है ॥१०॥ इन तीनों को नित्य ही देह में स्थित देखने वाले उस पाप-नाशक महात्मा का दर्शन लोक में दुर्लभ है ॥११॥ उसका दर्शन वेणी के समान है। इस प्रकार न मानने वाला व्यक्ति पापाचारी समझना चाहिए ॥१२॥ जिस मनुष्य के मस्तक पर विभूति नहीं, शरीर में रुद्राक्ष नहीं तथा मुख में भगवान् शिव से युक्त वाणी नहीं उसे अधम के समान त्याग देना चाहिए ॥१३॥ शिवजी का नाम गंगा, यमुना, विभूति और रुद्राक्ष यह सब पाप का नाश करने वाली सरस्वती कही गयी है ॥१४॥

शरीरे च त्रयं यस्य तत्फलं चैकतः स्थितम् ।
एकतो वेणिकायाश्च स्नानजंतु फलं बुधैः ॥१५
तदेवं तुलित पूर्वं ब्रह्मणा हितकारिणा ।
समानं चैव तज्जातं तस्माद्धार्यं सदा बुधैः ॥१६
तद्दिनं हि समारभ्य ब्रह्मविष्ण्वादिभिःसुरैः ।
धार्यते त्रितयं तच्च दर्शनात्पापहारकम् ॥१७

ईदृशं हि फलं प्रोक्तं नामादित्रितयोद्भवम् ।
तन्माहात्म्यं विशेषेण वक्तुमर्हसि सुव्रत ॥१८
ऋषयो हि महाप्रज्ञाः सच्छ्रुत्वा ज्ञानिनां वराः ।
तन्माहात्म्यं हि सद्भक्त्या शृणुतादरतो द्विजाः ॥१९
स गूढमपि शास्त्रेषु पुराणेषु श्रुतिष्वपि ।
भवत्स्नेहान्मया विप्राः प्रकाशः क्रियतेऽधुना ॥२०
कस्तत्त्रितयमाहात्म्यं सजानाति द्विजोत्तमाः ।
महेश्वरं विना सर्वं ब्रह्मांडे सद्सत्परम् ॥२१

जिस मनुष्य के देह में यह तीनों स्थित है, उसका फल भी इसमें स्थित है। वेणी के स्नान के समान ज्ञानियों ने इसका फल बताया है ॥१५॥ संसार के हितार्थ ब्रह्माजी ने इसे तोला था, उस समय यह बराबर ही बैठा। इसलिए विद्वानों को सदा ही विभूति धारण करनी चाहिए ॥१६॥ उसी दिन से ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं ने इन तीनों को धारण करने का नियम बनाया है, यह दर्शन मात्र से ही पाप-नाशिनी हैं ॥१७॥ ऋषियों ने पूछा कि जब तीनों के नाम का ऐसा फल कहा गया है तो आप कृपा करके उनका माहात्म्य हमारे प्रति विशेष रूप से कहें ॥१८॥ सूतजी ने कहा—हे ऋषियो ! तुम ज्ञानियों में श्रेष्ठ महापंडित एवं शिवजी के भक्त हो, अतः आदर सहित इनका माहात्म्य सुनो ॥१९॥ यह शास्त्र पुराण और श्रुतियों में भी गूढ़ हैं, हे ऋषियों तुम्हारे स्नेह के कारण उसे मैं अब प्रकट कर रहा हूँ ॥२०॥ हे विप्रो ! इन तीनों का माहात्म्य पूर्ण रूप से कौन जान सकता है ? उसे इस ब्रह्माण्ड में सत् और असत् से परे शिवजी ही जानते हैं ॥२१॥

वच्म्यहं नाममाहात्म्यं यथाभक्ति समासतः ।
शृणुत प्रीतियो विप्राः सर्वपापहरं परम् ॥२२
शिवेति नामदावाग्नेर्महापातकपर्वताः ।
भस्मीभवंत्यनायासात्सत्यं न संशयः ॥२३
पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक ।
शिवनामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा ॥२४

स वैदिकः स पुण्यात्मा स धन्या स बुधो मतः ।
शिवनामजपासक्तो यो नित्यं भुवि मानवः ॥२५
भवंति विविधा धर्मास्तेषां सद्यः फलोन्मुखाः ।
येषां भवति विश्वासः शिवनामजपे मुने ॥२६
पातकानि विनश्यंति यावंति शिवनामतः ।
भुवि तावंति पापानि क्रियंते न नरैर्मुने ॥२७
ब्रह्महत्यादिपापानां राशीनप्रमितान्मुने ।
शिवनाम द्रुतं प्रोक्तं नाशयत्यखिलान्नरैः ॥२८

मैं संक्षेप से नाम माहात्म्य यथाशक्ति कहता हूँ। हे विप्रो ! उस सम्पूर्ण पाप का नाश करने वाले नाम की महिमा प्रीति सहित सुनो। ॥२२॥ 'शिव' नाम ही पाप स्वरूप महा पर्वतों को भस्म करने वाला दावाग्नि है। इसके उच्चारण से ही पाप भस्म हो जाते है, इसमें संशय नहीं ॥२३॥ हे शौनक ! पाप से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के दुःख हैं, वे सब केवल एक 'शिव' नामोच्चार से ही नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥२४॥ जो मनुष्य इस पृथिवी पर शिव नाम का जाप करता है, वही वैदिक, पुण्यात्मा एवं पण्डित है वही धन्य है ॥२५॥ जिस मनुष्य को 'शिव' नाम में विश्वास होता है, उसे शीघ्र फल प्रदान करने वाले अनेक धर्म प्रकट हो जाते हैं ॥२६॥ 'शिव' नाम से मनुष्य पवित्र होता है, और पाप भी नष्ट हो जाते हैं। पृथिवी पर इतने तो पाप भी नहीं हैं, न मनुष्य करते हैं, जितने 'शिव' के नाम से नष्ट हो जाते हैं ॥२७॥ हे विप्रो ! 'शिव' नाम के उच्चारण करते ही ब्रह्महत्या आदि पापों के बड़े ढेर भी समूल नष्ट हो जाते ॥२८॥

शिवनामतरीं प्राप्य संसाराब्धि तरंति ये ।
संसारमूलपापानि तानि नश्यंत्यसंशयम् ॥२९
संसारमूलभूतानां पातकानां महामुने ।
शिवनामकुठारेण विनाशो जायते ध्रुवम् ॥३०
शिवनामामृतं पेयं पापदावानलार्दितैः ।
पापादवाग्नितप्तानां शांतिस्तेन विना न हि ॥३१

शिवेति नामपीयूषवर्षधारापरिप्लुताः ।
संसारदवध्येऽपि न शोचंति कदाचन ॥३२
शिवनाम्नि महद्भक्तिजाता येषां महात्मनाम् ।
तद्विधानां तु सहसा मुक्तिर्भवति सर्वथा ॥३३
अनेकजन्मभिर्येन तपस्तप्तं मुनीश्वर ।
शिवनाम्नि भवेद्भक्तिः सर्वपापापहारिणी ॥३४
यस्यासाधारणी शंभुनाम्नि भक्तिरखंडिता ।
तस्यैव मोक्षः सुलभो नान्यस्येति मतिर्मम ॥३५

जो मनुष्य 'शिव नाम की नौका को पाकर इस संसार-सागर से पार हो जाते हैं, उनके सभी सांसारिक पाप नष्ट होते हैं, इसमें संशय नहीं ॥२९॥ हे महामुने ! संसार के मूल रूप समस्त पापों का 'शिव' नाम रूपी कुठार से समूल नाश हो जाता है ॥३०॥ पाप स्वरूप दावाग्नि से दग्ध हुए मनुष्यों को शिव नाम रूप अमृत पीना चाहिए, उसके बिना उन मनुष्यों को शान्ति लाभ नहीं होता ॥३१॥ जो मनुष्य शिव नाम रूप अमृत की धारा से प्लुत हो चुके हैं, वे संसार रूप अग्नि में स्थित होकर भी कभी शोच नहीं करते ॥३२॥ जिन महात्माओं को शिव नाम की महाशक्ति प्राप्त हो चुकी है, उनकी मुक्ति तत्काल ही हो जाती है ॥३३॥ हे मुनिवरो ! अनेक जन्म तक तप करने वालों के सम्पूर्ण पापों को हरण करने वाली भी शिव शक्ति ही है ॥३४॥ जिसको शिवजी के साधारण नाम को भी अखण्ड भक्ति प्राप्त हैं, उसको मोक्ष नितान्त सुलभ है, अन्य को नहीं यह मेरा मत है ॥३५॥

कृत्वाप्यनेकपापानि शिवनामजपादरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवत्येव न संशयः ॥३६
भवंति भस्मसाद्वृक्षा दवदग्धा यथा वने ।
तथा तावंति दग्धानि पापानि शिवनामतः ॥३७
यो नित्यं भस्मपूतांगः शिवनामजपादरः ।
स तरत्येवं संसारमघोरमपि शौनक ॥३८
ब्रह्मस्वपरणं कृत्वा हत्वापि ब्राह्मणान्बहून् ।

न लिप्यते नरः पापैः शिवनामजपादरः ।।३६
विलोक्य वेदानखिलाच्छिवनामजपः परः ।
संसारतरणोपाय इति पूर्वैर्विनिश्चितम् ।।४०
किं बहूक्त्या मुनिश्रेष्ठाः श्लोकेनैकेन वच्म्यहम् ।
शिवनाम्नो महिमानं सर्वपापापहारणम् ।।४१
पापानां हरणं शम्भोर्नाम्नः शक्तिर्हि पावनी ।
शक्नोति पातकं तावत्कर्तुं नापि नरः क्वचित् ।।४२

अनेक पाप कर लेने पर भी जो मनुष्य शिव नाम का जप आदरपूर्वक करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है ।।३६।। जैसे वन में प्रकट दावानल से वृक्ष भस्म हो जाते हैं, वैसे ही शिव नाम के प्रभाव से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ।।३७।। जो मनुष्य अपने देह में नित्यप्रति भस्म लगाता और आदर सहित शिव नाम को जपता है, वह इस घोर संसार से पार हो जाता है ।।३८।। ब्राह्मणों का द्रव्य हरने वाला या ब्राह्मणों का बध करने वाला भी भक्ति पूर्वक शिव नाम का जाप करने से पापलिप्त नहीं होता है ।।३९।। शिव नाम ही परम जप है तथा यही संसार-सागर से तरने का उपाय है, पूर्वजों ने ऐसा निष्कर्ष सम्पूर्ण वेदों को देखकर किया था ।।४०।। हे मुनियों ! अधिक क्या कहूं, मैं एक श्लोक में ही यह बताये देता हूँ कि शिव नाम की महिमा सम्पूर्ण पापों को नष्ट करती है ।।४१।। पापों का हरण करने में शिवजी की शक्ति महा पावनी कही है । जितना इसका प्रभाव है, उतना तो पाप भी मनुष्य नहीं कर सकता ।।४२।।

शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमुत्तमाम् ।
इन्द्रद्युम्ननृपः पूर्वं महापापयुतो मुने ।।४३
तथा काचिद्द्विजा योषाऽसौ मुने बहुपापिनी ।
शिवनामप्रभावेण लेभे सद्गतिमत्तमाम् ।।४४
इत्युक्तं वो द्विजश्रेष्ठा नाममाहात्म्यमुत्तमम् ।
शृणुध्वं भस्ममाहात्म्यं सर्वपावनपावनम् ।।४५

शिव नाम के प्रभाव से श्रेष्ठ सद्गति उपलब्ध होती है । हे मुनिवर!

प्राचीन काल में इन्द्रद्युम्न नामका एक अत्यन्त पापी राजा हुआ था ।।४३।। तथा एक ब्राह्मण की महापापिनी स्त्री थी, शिव नाम के प्रताप से उनको भी पवित्र गति की प्राप्ति हो गई थी ।।४४।। हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार तुम्हारे प्रति नाम का श्रेष्ठ माहात्म्य कहा है । अब सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला, भस्म-माहात्म्य श्रवण करो ।।४५।।

।। भस्म का माहात्म्य ।।

द्विविधं भस्म संप्रोक्तं सर्वमंगलदं परम ।
तत्प्रकारमहं वक्ष्ये सावधानतया शृणु ।।१
एकं ज्ञेय महाभस्म द्वितीयं स्वल्पसंज्ञकम् ।
महाभस्म इति प्रोक्तं भस्म नानाविधं परम् ।।२
तद्भस्म त्रिविधं प्रोक्तं श्रौतं स्मार्तं च लौकिकम् ।
भस्मैव स्वल्पसंज्ञ हि बहुधा परिकीर्तितम् ।।३
श्रौतं भस्म तथा स्मार्तं द्विजानामेव कीर्तितम् ।
अन्येषामपि सर्वेषामपरं भस्म लौकिकम् ।।४
धारणं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां मुनिपुङ्गवैः ।
केवलं धारणं ज्ञेयमन्येषां मंत्रवर्जितम् ।।५
आग्नेयमुच्यते भस्म दग्धगोमयसंभवम् ।
तदपि द्रव्यमित्युक्तं त्रिपुंड्रस्य महामुने ।।६
अग्निहोत्रोत्थितं भस्म संग्राह्यं वा मनीषीभिः ।
अन्ययज्ञोत्थितं वापि त्रिपुंड्रस्य च धारणे ।।७

सूतजी ने कहा—सम्पूर्ण मंगलों को प्रदान करने वाली भस्म के दो प्रकार कहे गए हैं, उसका वर्णन करता हूं । सावधानी से सुनो ।।१।। एक प्रकार की महाभस्म कही गई है, दूसरी स्वल्प बतायी गई है । महाभस्म के अनेक प्रकार बताये गये हैं ।।२।। उसके तीन प्रकार कहे हैं—श्रौत, स्मार्त और लौकिक तथा स्वल्प संज्ञक भस्म अनेक प्रकार कही गयी है ।।३।। ब्राह्मणों के लिए श्रौत और स्मार्त भस्म का विधान है तथा अन्य व्यक्तियों के निमित लौकिक भस्म कही गयी हैं ।।४।। ब्राह्मणों को भस्म

धारण करना मन्त्रों से कहा गया है, परन्तु अन्यों के लिए भस्म धारण में मन्त्र वर्जित बताये गये हैं ।।५।। हे महामुने ! गोबर से निर्मित्त भस्म आग्नेय कही गयी है । त्रिपुण्ड्र का द्रव्य यही माना गया है ।।६।। अथवा, विद्वानों के लिए अग्निहोत्र की भस्म धारण करना कहा है तथा अन्य यज्ञ से उपलब्ध भस्म त्रिपुण्ड्र धारण में उचित है ।।७।।

अग्निरित्यादिभिर्मंत्रैर्जाबालोपनिषद्गतः ।
सप्तभिर्धूलनं कार्यं भस्मना सजलेन च ।।८
वर्णानामाश्रमाणां च मंत्रतोऽमंत्रतोऽपि च ।
त्रिपुंड्रोद्धूलनं प्रोक्तं जाबालैरादरेण च ।।९
भस्मनोद्धूलनं चैव यथा तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ।
प्रमादादपि मोक्षार्थी न त्यजेदिति विश्रुतिः ।।१०
शिवेन विष्णुनाचैव तथा तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम् ।
उमा देवी च लक्ष्मीश्च वाचान्याभिश्च नित्यशः ।।११
ब्राह्मणै क्षत्रियैर्वैश्यः शूद्रैरपि च संकरैः ।
अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना ।।१२
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया ताचरन्ति ये ।
तेषां नास्ति समाचारो वर्णाश्रमसमन्वितः ।।१३
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये ।
तेषां नास्ति विनिर्मुक्तिः संसाराज्जन्मकोटिभिः ।।१४

जाबाल उपनिषद् में कहे हुए अग्निरित्यादि मन्त्रों से भस्म को जल-योग से सात बार शरीर में धारण करे ।।८।। जाबाल ने वर्णो तथा आश्रमों को आदर सहित मन्त्रों से त्रिपुण्ड्र का धारण करना कहा है ।९। श्रुति के अनुसार शरीर में भस्म धारण करना और तिरछा त्रिपुण्ड्र लगाना, इस कार्य का कभी त्याग न करे ।।१०।। शिव विष्णु से तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण किया जाने पर भगवती उमा और लक्ष्मीजी से नित्य प्रशंसा को प्राप्त होता है ।।११।। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर तथा अपभ्रंशों वाली जातियों द्वारा भी त्रिपुण्ड्र और भस्म को धारण किया गया है ।।१२।। जो वर्णाश्रमी श्रद्धापूर्वक भस्मलेप और त्रिपुण्ड्र

धारण नहीं करते, उनका वर्णाश्रम युक्त सदाचार नहीं माना जाता। ॥१३॥ जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक त्रिपुण्ड्र और शरीर पर भस्म धारण नहीं करते वह करोड़ जन्मों में भी संसार से मुक्त नहीं हो पाते ॥१४॥

उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषां नास्ति शिवज्ञानं कल्पकोटिशतैरपि ॥१५
इद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
ते महापातकैर्युक्ता इति शास्त्रीयनिर्णयः ॥१६
उद्धूलनं त्रिपुंड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये।
तेषामाचरितं सर्वं विपरीतफलाय हि ॥१७
महापातकयुक्तानां जंतूनां सर्वविद्विषाम्।
त्रिपुंड्रोद्धूलनं द्वेषो जायते सुदृढं मुने ॥१८
शिवाग्निकार्यं यः कृत्वा कुर्यात्त्रियायुषात्मवित्।
मुच्यते सर्वपापैस्तु स्पृष्टेन भस्मना नरः ॥१९
सितेन भस्मना कुर्यात्त्रिसन्ध्य यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते ॥२०
सितेन भस्मना कुर्याल्ललाटे तु त्रिपुण्ड्रकम्।
योऽसावनादिभूतान्हि लोकानाप्तो मृतो भवेत् ॥२१

श्रद्धापूर्वक शरीर पर भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण न करने वाले मनुष्यों को सौ करोड़ कल्प में भी शिव ज्ञान की प्राप्ति नही होती ॥१५॥ शास्त्र का निर्णय है कि श्रद्धा सहित शरीर पर भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण जो मनुष्य नहीं करते वे अत्यन्त पापी हैं ॥१६॥ श्रद्धापूर्वक भस्म लेपन और त्रिपुण्ड्र धारण न करने वाले मनुष्यों के सभी आचरण विपरीत फल को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥१७॥ हे मुने ! त्रिपुण्ड्र और भस्म से द्वेष उन्हीं का है, जो प्राणी सब जीवों से द्वेष करने वाले तथा महा पापों से युक्त हैं ॥१८॥ जो ज्ञानी पुरुष 'शिवाग्नि' से 'त्र्यायुषेति' मन्त्र से भस्म धारण करता है, वह भस्म का स्पर्श होते ही सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ॥१९॥ जो मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह सम्पूर्ण पापों से छूट कर शिवसंग प्राप्त कर

प्रसन्न होता है ॥२०॥ जो मनुष्य श्वेत भस्त से ललाट में त्रिपुण्ड धारण करता है, बह अनादि भूतलोकों में अमृत हो जाता है ॥२१॥

अकृत्वा भस्मना स्नानं न जपेद्वै षडक्षरम् ।
त्रिपुड्रं च रचित्वा तु विधिना भस्मना जपेत् ॥२२
अदयो वाधमो वापि सर्वपापान्वितोऽपि वा ।
उषःपापान्वितो वापि मूर्खो वा पतितोऽपि वा ॥२३
यस्मिन्दे शेवसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः ।
सर्वतीर्थैश्च क्रतुभिः सानिध्यं क्रियते सदा ॥२४
त्रिपुण्ड्रसहितो जीवः पूज्यः सर्वैः सुरासुरैः ।
पापान्वित्तोऽपि शुद्धात्मा कि पुनः श्रद्धया युतः ॥२५
यस्मिन्देशे शिवज्ञानी भूतिशासनसंयुतः ।
गतो यदृच्छयाद्यापि तस्मिंस्तीर्थाः समागतः ॥२६
बहुनात्र किमुक्तेन धार्यं भस्म सदा बुधैः ।
लिंगार्चनं सदा कार्यं जप्यो मन्त्रः षडक्षरः ॥२७
ब्रह्मणा विष्णुना वापि रुद्रेण मुनिभिः सुरैः ।
भस्मधारणमाहात्म्यं न शक्यं परिभाषितुम् ॥२८

भस्म से स्नान किये बिना षडक्षर का जप नहीं करना चाहिए । भस्म का त्रिपुण्ड लगाकर ही विधि पूर्वक जप करना उचित है ॥२२॥ दया से रहित, अधम सम्पूर्ण पापों से युक्त, हत्या के पाप वाला, अथवा मूर्ख या पतित कैसा भी मनुष्य क्यों न हो ॥२३॥ जिस देश में भस्म धारण पूर्वक निवास करता है, वहीं सम्पूर्ण तीर्थों और यज्ञों का निवास समझना चाहिए ॥२४॥ त्रिपुण्ड्रयुक्त मनुष्य देवता और दैत्यों से भी पूजित होता है । यदि वह पापी भी है तो शुद्धात्मा हो जाता है, फिर अन्य की तो बात ही क्या है ॥२५॥ शिवज्ञानी पुरुष जिस देश में भूति-शासन से युक्त निवास करता है, वह सभी तीर्थों का स्थल रूप समझना चाहिए ॥२६॥ अधिक कथन से क्या ? विद्वानों को सदा ही भस्म धारण, लिंग पूजन और षडक्षर मन्त्र का जप करना श्रेयस्कर है ॥२७॥ ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, मुनि तथा देवता भी भस्म धारण करने के माहात्म्य को

कहने में समर्थ नही हैं ॥२८॥

इति वर्णाश्रमाचारो लुप्तावर्णक्रियोऽपि च ।
पापात्सकृत्त्रिपुण्ड्रस्य धारणात्सोऽपि मुच्यते ॥२९
ये भस्मधारिणं त्यक्त्व कर्म कुर्वन्तिमानवाः ।
तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः ससाराज्जमन्कोटिभिः ॥३०
तेनाधीतं गुरोः सर्वं तेन सवनुष्ठितम् ।
येन विप्रेण शिरसि त्रिपुंड्र भस्मना कृतम् ॥३१
ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा नराः कुर्वंति ताडनम् ।
तेषां चंडालतो जन्म ब्रह्मन्नेह्य विपश्चिता ॥३२
मानस्तोकेन मंत्रेण मंत्रित भस्म धारयेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियश्चैव प्रोक्तेष्वंगेषु भक्तिमान् ॥३३
वैश्यस्त्रियंबकेनव शूद्रः पंचाक्षरेण तु ।
अन्यासां विधवास्त्रीणां विधिः प्रोक्तश्च शूद्रवत्ः ॥३४
पंचब्रह्मादिमनुभिर्गृहस्थस्य विधीयते ।
त्रियंबकेन मनुना विधिर्वैब्रह्मचारिणः ॥३५

इस प्रकार जिसने वर्णाचार और वर्ण की क्रिया को लुप्त कर दिया है,वह एक बार त्रिपुण्ड धारण करने से ही पाप-मुक्त हो जाता है । भस्म-धारण करने वाले का त्याग जो मनुष्य करते हैं उनकी करोड़ जन्म धारण करने पर भी संसार से मोक्ष नहीं होती । जिस ब्राह्मण ने त्रिपुण्ड धारण किया, उसने गुरु के समीप सब कुछ पढ़ लिया और अनुष्ठान कर लिया समझो । जो मनुष्य भस्मधारी को देखकर उसे फटकार देते हैं, उन मनुष्यों को चाँडाल योनि से उत्पन्न समझना चाहिए ॥२९-३२॥ 'मान-स्तोके' मंत्र से अभिमन्त्रित भस्म का धारण करे और ब्राह्मण, क्षत्रिय इसे भक्तिपूर्वक देह पर लगावें वैश्य को 'त्र्यंबक मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म धारण करनी चाहिए तथा शूद्र और विधवा स्त्री को पंचाक्षर मन्त्र से भस्म लगानी चाहिए । मनु ने गुहस्थ के लिए पंचब्रह्म के मन्त्र कहे हैं और ब्रह्मचारी के लिए 'त्र्यंबकम' मन्त्र से लेप करना कहा है ॥३३-३५॥

अघोरेणाथ मनुना विपिनस्थाविधिस्मृतः ।

यतिस्तु प्रणवेनैव त्रिपुण्ड्रं दीनि कारयेत् ॥३६
अतिवर्णाश्रमी नित्यं शिवोऽहंभावनात्परात् ।
शिवयोगी च नियतमीशानेनापि धारयेत् ॥३७
न त्याज्यं सर्ववर्णैश्च भस्मधारणमुत्तमम् ।
अन्यैरपि यथा जीवैः सदेति शिवशासनम् ॥३८
भस्मस्नानेन यावंतः कणाः स्वांगे प्रतिष्ठिताः ।
तावंति शिवलिंगानि तनौ धत्ते हि धारकः ॥३९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चापि च संकराः ।
स्त्रियोऽथ विधवा बालाः प्राप्ताः पाखंडिकास्तथा ॥४०
ब्रह्मचारी गृही वन्यः संन्यासो वा व्रती तथा ।
नार्यो भस्म त्रिपुंड्रांका मुक्ता एव न संशयः ॥४१
ज्ञानाज्ञानघृतो वापि वन्हिदाहसमो यथा ।
ज्ञानाज्ञानघृतं भस्म पावमेत्सकलं नरम् ॥४२

वन में रहने वालों को अघोर मन्त्र की विधि कही है तथा यति के लिए प्रणव से ही त्रिपुण्ड लगाना कहा है ॥ ३६ ॥ अतिवर्णाश्रमी को 'शिवोह' की भावना करके धारण करना और शिवयोगी को ईशान मन्त्र से धारण करने की विधि कही है ॥३७॥ किसी भी वर्ण को भस्म धारण के त्याग का निर्देश नहीं हैं तथा अन्य जीव भी इसको धारण करे, ऐसी शिवजी की आज्ञा है ॥३८॥ अपने शरीर में जितने कण भस्म स्नान के द्वारा प्रविष्ट होते हैं, उतने ही शिवलिंग वे अपने देह में धारण करते हैं ॥३९॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णसंकर, स्त्री, विधवा, बालक अथवा पाखण्डी आदि कोई भी क्यों न हो ॥४०॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थी, बनवासी, सन्यासी, व्रती तथा स्त्री यह सभी भस्म धारण करने से युक्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥४१॥ ज्ञान या अज्ञान से धारण की हुई अग्नि दाह के तुल्य है, वैसे ही ज्ञान या अज्ञान से धारण की हुई भस्म मनुष्य को सदा पवित्र कर देती है ॥४२॥

नाश्नीयाज्ज्वलमन्नमल्पमपि वा भस्माक्षधृत्या विना ।
भुक्त्वा वाथ गृही वनीपतियतिर्वर्णी तथा संकरः ॥४३

एनोभुङ्नरक प्रयाति स तदा गायत्रिजापेन त-
द्वर्णानां तु यतेस्तु मुख्यप्रणवाजापेन मुक्तिर्भवेत् ॥४३
त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दति निन्दन्ति शिवमेव ते ।
धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते ॥४४
धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम् ।
धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम् ॥४५
ये निंदति महेश्वरं त्रिजगतामाधारभूतं हरं,
ये निंदंति त्रिपुण्ड्रधारणकरं दोषस्तु तद्दर्शने ।
ते वै सकरसूकरासुरखश्वक्रोष्टुकीटोपमा जाता
एव भवन्ति पापपरमास्ते नारकाः केवलम् ॥४६
ते दृष्ट्वा शशिभास्करौ निशि दिने स्वप्नेऽपि नो केवलं ।
पश्यतु श्रुतिरुद्रसूक्तजपतो मुच्येत तेनादृताः ॥
तत्संभाषणतो भवेद्धि नरकं निस्तारवानास्थितं ।
ये भस्मादिविधारण हि पुरुषं निंदन्ति मंदा हि ते ॥७
तत्रते बहवो लोका बृहज्जाबालचोदिताः ॥४८
ते विचार्याः प्रयत्नेन ततो भस्मरतो भवेत् ॥४९

जो मनुष्य भस्म और रुद्राक्ष धारण नहीं करते उनका अन्न-जल किंचित् भी ग्रहण न करे । गृहस्थी, वनवासी, यती, वर्णी या संकर जाति के यहां भोजन, पाप भक्षण समझे, प्रायश्चित् में तीन वर्ण गायत्री का जप करे । संन्यासी केवल प्रणव का जप करने से ही पवित्र हो जाता है ॥४३॥ जो लोग त्रिपुण्ड्र की निन्दा करते है, और जो त्रिपुण्ड धारण करते हैं, वह शिव को ही धारण करते है ॥४४॥ भस्महीन मस्तक, शिवालयहीन ग्राम, ईश्वर-पूजा रहित जन्म तथा शिवाश्रय हीन विद्या, इन सभी को धिक्कार है ॥४५॥ त्रैलोक्याधार शिव के निन्दक और त्रिपुण्ड के निन्दक के दर्शन में दोष है । वे वर्णसंकर, शूकर, असुर, खर, कुत्ता, गीदड़ या कीड़े के समान हैं वे पाप स्वरूप केवल नरक में जाने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं ॥४६॥ वे सूर्य चन्द्र को भी नहीं देख पाते परन्तु आदर सहित रुद्र सूक्त जपने से मुक्त हो सकते हैं । भस्मधारी पुरुष की

निन्दा करने वाले भी महामूढ़ हैं ॥४७-४८॥ बृहज्जाबाल द्वारा प्रेरित अनेक लोक हैं उनको विचार करता हुआ प्रयत्नपूर्वक भस्म धारणकरे।४९।

यच्चंदनैश्चंदनकेऽपि मिश्रं धार्यं हि भस्मैव त्रिपुण्ड्रभस्मना ।
विभूतिभालोपरि किंचनापि धार्यं सदा नो यदि संति बुद्धयः॥
स्त्रीभिस्त्रिपुण्ड्रमलकावधि धारणीयं भस्म
द्विजादिभिरथी विधवाभिरेवम् ।
तद्वत्सदाश्रमवतां विशदा विभूति-
र्धार्यापवर्गफलदा सकलाघहन्त्री ॥५१
त्रिपुण्ड्रं कुरुते यस्तु भस्मना विधिपूर्वकम् ।
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ॥५२
ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।
ब्रह्मक्षत्राश्च विट्शूद्रास्तथान्ये पतिताधमाः ॥५३
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च धृत्वा शुद्धा भवति च ।
भस्मनो विधिना सम्यक्पापराशिं विहाय च ॥५४
श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने ।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः ॥५५
जलस्नानं मलत्यागे भस्मस्नानं सदा शुचि ।
मंत्रस्नान हरेत्पाप ज्ञानस्नाने परं पदम् ॥५६

चन्दन में मिलाकर विभूति धारण करने वालों की विधि भी ठीक है किसी प्रकार सही—मस्तक पर विभूति अवश्य धारण करे ॥५०॥ स्त्री, विधवा तथा ब्राह्मणों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिये, यह सभी आश्रमों को मोक्ष दायक हैं । इस पाप नाशिनी बिभूति को अवश्य धारण करे ॥५१॥ जो मनुष्य विधिपूर्वक भस्म से त्रिपुण्ड लगाता है वह महापापों तथा उप-पातकों से भी मुक्त हो जाता है ॥२५॥ ब्रह्मचारी, गृहस्थी, यती, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्य पतित एवं अधम मनुष्य भी इस भस्म और त्रिपुण्ड के धारण से पवित्र हो जाते हैं । उसका पापों के ढेर से छुटकारा हो जाता है ॥५३-५४॥ श्राद्ध, यज्ञ जप, हवन, वैश्वदेव तथा देवार्चन में त्रिपुण्ड को जो धारण करता है, वह मृत्यु पर भी विजय

प्राप्त कर लेता है ॥५५॥ मल त्याग में जल-स्नान पुनीत है, भस्म स्नान सदा पवित्र है, मन्त्र-स्नान पाप का हरण करने वाला है तथा ज्ञान-स्नान से परमपद प्राप्त होता है ॥५६॥

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति भस्मस्नानकरो नरः ॥५७
भस्मस्नानं परं तीर्थं गङ्गास्नानं दिने दिने ।
भस्मरूपो शिवः साक्षाद्भस्म त्रैलोक्यपावनम् ॥५८
न तदूनं न तद्ध्यानं न तद्दानं जपो न सः ।
त्रिपुण्ड्रेण विना येन विप्रेण यदनुष्ठितम् ॥५९
वानप्रस्थस्य कन्यानां दीक्षाहीननृणां तथा ।
मध्याह्नात्प्राग्जलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम् ॥६०
एवं त्रिपुण्ड्रं यः कुर्यान्नित्य नियतमानसः ।
शिवभक्तः स विज्ञेयो भुक्ति मुक्ति च विंदति ॥६१
यस्यांगे नव रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः ।
तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितो यदि ॥६२
तिस्रो रेखा भवंत्येव स्थानेषु मुनिपुङ्गवाः ।
ललटादिषु सर्वेषु यथोक्तेषुबुधैर्मुने ॥६३

जो पुण्य फल सब तीर्थों में स्नान का कहा गया है, वह फल भस्म से स्नान करने वाले शिव भक्त को अनायास ही प्राप्त हो जाता है ॥५७॥ भस्म स्नान को परम तीर्थ समझो भस्म रूप में साक्षात् शिव ही हैं। भस्म द्वारा तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं ॥५८॥ जो ब्रह्माण्ड त्रिपुण्ड धारण किये बिना अनुष्ठान करता है, उसका स्नान, दान, ध्यान, जप सभी कर्म निष्फल समझो ॥५९॥ वानप्रस्थ, कन्या तथा दीक्षाहीन मनुष्यों को मध्याह्न से पहिले ही स्नान कर लेना चाहिए, इसके पश्चात् इनके लिए जल-स्नान वर्जित है ॥६०॥ जो मनुष्य नित्य प्रति नियमित रूप से त्रिपुण्ड धारण करता है, वह शिव भक्त है तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही उसके लिए सुलभ हैं ॥६१॥ अनेक पुण्यों के देने वाला एक भी रुद्राक्ष जिसके शरीर में नहीं है तथा जिसने त्रिपुण्ड भी नहीं धारण किया है,

उसका जन्म निष्फल ही है ॥६२॥ हे मुने ! पंडित जन कहते हैं कि ललाट आदि में त्रिपुण्ड की तीन रेखाएँ होती हैं ॥६३॥

भ्रुवोर्मध्यं समारभ्य यावदंदो भवेद्भ्रुवोः ।
तावत्प्रमाणं सधार्यं ललाटे च त्रिपुण्ड्रकम् ॥६४
मध्यमानामिकांगुल्या मध्ये त प्रतिलोमतः ।
अंगुष्ठेन कृता रेखा त्रिपुण्ड्राख्यामिधीयते ॥६५
मध्येऽगुलिभिरादाय तिसृभिर्भस्म यत्नतः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् ॥६६
तिसृणामपि रेखानां प्रत्येकं नवदेवताः ।
सर्वत्रागेषु ता वक्ष्ये सावधानतया शृणु ॥६७
अकारो गार्हपत्याग्निर्भूर्धर्मश्च रजोगुणः ।
ऋग्वेदश्च क्रियाशक्तिः प्रातः सवनमेव च ॥६८
महादेवश्च रेखायाः प्रथमायाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूलाः शिवदीक्षापरायणैः ॥६९
उकारो दक्षिणाग्निश्च नभस्तत्व यजुस्तथा ।
मध्यदिन च सवनमिच्छाशक्त्यरात्मको ॥७०

भौं के मध्य से भौं के अन्त तक प्रमाण का त्रिपुण्ड मस्तक में लगावे ॥६४॥ मध्यमा और अनामिका से मध्य में प्रतिलोम से अँगूठे द्वारा की हुई रेखा त्रिपुण्ड है ॥६५॥ तीन अंगुलियों के मध्य से भस्म को ग्रहण कर भक्ति पूर्वक त्रिपुण्ड धारण करे । यह भोग एवं मोक्ष का देने वाला है ॥६६॥ तीनों रेखाओं के क्रम से नौ देवता सब शरीर में हैं, उसे कहता हूँ ॥६७॥ अकार गार्हपत्य अग्नि है, भू रजोगुण है, क्रिया शक्ति ऋग्वेद है और प्रातः सवन है ॥६८॥ प्रथम रेखा के देवता महादेव हैं । हे मुने ! शिव दीक्षा परायण पुरुषों को यह बात अवश्य जाननी चाहिये ॥६९॥ उकार दक्षिणाग्नि है, आकाश सत्वगुण, यजुर्वेद मध्यदिन का सवन, इच्छा शक्ति अन्तरात्मा है ॥७०॥

महेश्वरश्च रेखायाः द्वितीयाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ॥१

मकाराहवनीयौ च परमात्मा तमोदिवौ ।
ज्ञानशक्तिः सामवेदस्तृतीयं सवनं तथा ।।७२
शिवश्चैव च रेखायास्तृतीयायाश्च देवता ।
विज्ञेया मुनिशार्दूल शिवदीक्षापरायणैः ।।७३
एवं नित्यं नमस्कृत्य सद्भक्त्या स्थानदेवताः ।
त्रिपुण्ड्रं धारयेच्छुद्धौ भुक्तिं मुक्तिं च विंदति ।।७४
एतेषां नाममात्रेण त्रिपुंड्रं धारयेद्बुधः ।
कुर्याद्वा षोडशस्थाने त्रिपुण्ड्रं तु समाहितः ।।७५
शीर्षके च ललाटे च कंठे चांसद्वये भुजे ।
कूर्परे मणिबंधे च हृदये नाभिपार्श्वके ।।७६
पृष्ठे चैवं प्रतिष्ठाय यजेत्तत्राश्विदैवते ।
शिवं शक्तिं तथारुद्रमीशं नारदमेव च ।।७७

दूसरी रेखा के देवता महेश्वर हैं। दीक्षा वाले पुरुषों को इसका जानना आवश्यक है ।७१। मकार अवाहनीय परमात्मा स्वरूप, तमोगुण स्वर्ग रूप, ज्ञान-शक्ति सामवेद तृतीय सवन है ।७२। तृतीय रेखा के देवता शिव हैं। हे मुनिवरो ! शिव दीक्षा परायण मनुष्यों को इनका ज्ञान आवश्यक है ।७३। इस प्रकार सद्भक्ति पूर्वक स्थान के देवताओं को नमस्कार करे तथा शुद्ध होकर त्रिपुण्ड धारण करे तो मुक्ति-मुक्ति की प्राप्ति होती है ।७४। शिव के केवल नाम से पण्डितों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए अथवा सोलह स्थानों में त्रिपुण्ड धारण करें ।७५। शिर, ललाट, कण्ठ, कन्धे, भुजाएँ, कूर्पर, मणिबन्ध, हृदय, नाभि, दोनों पार्श्व ।७६। एवं पीठ में स्थापित कर अश्विनीकुमार का यजन करे तथा शिवशक्ति, रुद्र, ईश, नारद ।७७।

वामादिनवशक्तीश्च एताः शोडश देवताः ।
नासत्यौ दस्रकश्चैव अश्विनौ द्वौ प्रकीर्तितौ ।।७८
अथवा मूर्ध्नि केशे च कर्णयोर्वदने तथा ।
बाहुद्वये च हृदये नाभ्यामूरुयुगे तथा ।।७९
जानुद्वये च पदयोः पृष्ठभागे च षोडश ।

शिवश्चन्द्रश्च रुद्रः को विघ्नेशो विष्णुरेव वा ।।८०
श्रीश्चैव हृदये शम्भुस्तथा नाभौ प्रजापतिः ।
नागश्च नागकन्याश्च उभयोर्ऋषिकन्यकाः ।।८१
पादयोश्च समुद्राश्च तीर्थाः पृष्ठे विशालतः ।
इत्येवं षोडशस्थानमष्टस्थानथोच्यते ।।८२
गुह्यस्थानं ललाटश्च कर्णद्वयमनुत्तमम् ।
अंसयुग्मं च हृदयं नाभिरित्येवमष्टकम् ।।८३
ब्रह्मा ऋषयः सप्त देवताश्च प्रकीर्तिताः ।।८४

वामादि नव-शक्ति यह षोडश देवता तथा नासत्य एवं दस्र यह दो अश्विनीकुमार, शिखा, केश, कान, मुख, बाहु, हृदय, नाभि और दोनों उरु, दोनों जानु, दोनों चरण पृष्ठ भाग इन षोडश स्थानों में धारण करे, शिव, चन्द्र, ब्रह्मा, विघ्नेश और विष्णु, हृदय में श्री, नाभि थे शिव तथा प्रजापति, नाग, नागकन्या, दोनों ऋषि-कन्या, चरणों में समुद्र, पृष्ट में तीर्थ यह षोडश स्थान हैं । अब आठ स्थान कहते हैं, गुह्य स्थान, ललाट, कर्ण द्वय, स्कन्ध द्वय, हृदय और नाभि आठ स्थान हैं, ब्रह्मा और सप्तर्षि इनके देवता हैं ।७८-८४।

अथवा मस्तकं बाहू हृदयं नाभिरेव च ।
पञ्चस्थानान्यभूत्याहुर्धारणे भस्मविज्जनाः ।८५
त्रिनेत्रं त्रिगुणाधारं त्रिवेदजनकं शिवम् ।
स्मरन्नमः शिवायेति ललाटे तु त्रिपुंड्रकम् ।८६
ईशाभ्यां नम इत्युक्त्वा पार्श्वयोश्च त्रिपुंड्रकम् ।
बीजाभ्यां नम इत्युक्त्वा धारयेत्तु प्रकोष्ठयोः ।८७
कुर्य्यादधः पितृभ्यां च उमेशाभ्यां तथोपरि ।
भीमायेति ततः पृष्ठे शिरसा पश्चिमे तथा ।८८

अथवा मस्तक, हृदय, भुजायें, नाभि इन ५ स्थानों में भस्म धारण करे। तीन नेत्र, तीन गुणों के आधार, तीनों वेदों को प्रकट करने वाले शिवजी के स्मरण पूर्वक 'नमः शिवाय' मन्त्र से त्रिपुण्ड धारण करे।

'ईशाभ्यां नमः' कहकर दोनों पार्श्वों में त्रिपुण्ड धारण करे। 'बीजाभ्यां नमः' मन्त्र कहकर प्रकोष्ठ में धारण करे, 'कूर्पराय नमः' कहकर इससे नीचे और 'पितृभ्यां नमः' कहकर दोनों ओर ईशाभ्यां नमः' कहकर इससे ऊपर तथा 'भीमाय नमः' कहकर पीठ और शिर के पश्चिम भाग में धारण करे ॥८५-८८॥

ॐ रुद्राक्ष माहात्म्य वर्णन ॐ

शौनकर्षे महाप्राज्ञ शिवरूप महामते ।
शृणु रुद्राक्षमाहात्म्यं समासात्कथयाम्यहम् ॥१
शिवप्रियतमो ज्ञेयो रुद्राक्षः परपावनः ।
दर्शनात्स्पर्शनाज्जाप्यात्सर्वपापहरः स्मृतः ॥२
पुरा रुद्राक्षमहिमा देव्यग्रे कथितो मुने ।
लोकोपकरणार्थाय शिवेय परमात्मना ॥३
श्रूयतां तु महेशानि रुद्राक्षमहिमा शिवे ।
कथयामि तव प्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥४
श्वेतरक्ताः पीतकृष्णा वर्णाज्ञेयाः क्रमाद्बुधैः ।
स्वजातीयं नृभिर्धार्य रुद्राक्षं वर्णतः क्रमात् ॥५
वर्णैस्तु तत्फलं धार्य भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः ।
शिवभक्तैर्विशेषेण शिवयोः प्रीतये सदा ॥६
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम् ।
बदरीफलमात्रं तु मध्यमं संप्रकीर्तितम् ॥७

सूतजी ने कहा—हे शौनक ! अब साक्षात् शिव-स्वरूप रुद्राक्ष का माहात्म्य कहता हूँ, तुम ध्यान से सुनो ॥१॥ अत्यन्त पवित्र, रुद्राक्ष, शिवजी का अत्यन्त प्रिय है, दर्शन, स्पर्श तथा जप से सम्पूर्ण पापों का नाशक है ॥२॥ प्रथम भगवान् शिव ने लोकोपकार के लिए भगवती के समक्ष रुद्राक्ष की महिमा वर्णन की थी ॥३॥ शिवजी ने कहा था—हे महेशानि ! रुद्राक्ष की महिमा श्रवण करो। तुम्हारी प्रीति के

कारण तथा भक्तों के हित की रक्षा से कहता हूँ ॥४॥ विद्वानों को इनके क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण भेदों का ज्ञान आवश्यक है। अपनी जाति के अनुसार वर्णों के ही रुद्राक्ष धारण करे ॥५॥ भुक्ति-मुक्ति का इच्छुक पुरुष उसके फल को अवश्य धारण करे, शिव-भक्तों को तो शिवा और शिव की प्रीतिके लिये इसका धारण करना अनिवार्य है श्रेष्ठ रुद्राक्ष आँवले के फल के समान है, बदरीफल के समान मध्यम है ॥७॥

अधमं चणमात्रं स्यात्प्रक्रियेषा परोच्यये ।
शृणु पार्वति सुप्रीत्या भक्तानां हितकाम्यया ॥८
वदरीफलमात्रं च यत्स्यात्किल महेश्वरि ।
तथापि भलदं लोके सुखसौभाग्यवर्द्धनम् ॥९
धात्रीफलसमं यत्स्यात्सर्वारिष्टविनाशनम् ।
गुंजया सदृशं यत्स्यात्सर्वार्थफलसाधनम् ॥१०
यथा यथा लघुः स्याद्वै तथाधिकफलप्रदः ।
एकैकतः फलं प्रोक्तं दशांशैरधिकं बुधैः ॥११
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं पापनाशनहेतवे ।
तस्माच्च धारणीयो वै सर्वार्थसाधनो ध्रुवम् ॥१२
यथा च दृश्यते लोके रुद्राक्षः फलदः शुभः ।
न तथा दृश्यतेऽन्या च मालिका परमेश्वरि ॥१३
समाः स्निग्धा दृढ़ाः स्थूलाः कंटकैः संयुताः शुभाः ।
रुद्राक्षाः कामदा देवि भुक्तिमुक्तिप्रदाः सदा ॥१४

चणक प्रमाण को अधम समझो। हे पार्वती ! इनकी प्रक्रिया को ध्यान से सुनो, भक्तों के हितार्थ कथन करता है ॥८॥ हे महेश्वरी ! वेर प्रमाण का रुद्राक्ष भी लोक में सुख सौभाग्य की वृद्धि करने वाला है ॥९॥ धात्री फलके बराबर का रुद्राक्ष सम्पूर्ण अरिष्ट शमन करता है तथा चौंटली के प्रमाण का रुद्राक्ष सर्वार्थ साधक है ॥१०॥ जितना छोटा होगा, उतना ही अधिक फलदायक होगा। परस्पर एक दूसरे से एक-एक दशांश अधिक फल प्रदान करता है ॥११॥ रुद्राक्ष को पाप-नाश के निमित्त धारण किया जाता है। इसलिए सम्पूर्ण अर्थों की सिद्धि चाहने

वालों को इसे धारण करना चाहिए ॥१२॥ संसार में रुद्राक्ष की माला जितनी फलदायक है उतनी अन्य कोई माला नही है ।१३। सम, स्निग्ध, दृढ़, स्थूल, काटों वाले शुभ रुद्राक्ष कामनाप्रद हैं तथा यह सदा मुक्ति-मुक्ति प्रदायक हैं ।१४।

कृमिदुष्टं छिन्नभिन्नं कटंकैर्हीनमेव च ।
व्रणयुक्तमवृत्तं च रुद्राक्षान्षड्विवर्जयेत् ॥१५
स्वयमेव कृतद्वारं रुद्राक्षं स्यादिहोत्तमम् ।
यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत् ॥१६
रुद्राक्षधारणं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।
रुद्रसंख्याशतं धृत्वा रुद्ररूपो भवेन्नरः ॥१७
एकादश शतानीह धृत्वा यत्फलमाप्यते ।
तत्फलं शक्यते नैव वक्तुं वर्ष शतैरपि ॥१८
शताद्धेन युतैः पंचशतै र्वै मुकुद मतम् ।
रुद्राक्षैर्विरचेत्सम्यग्भक्ति मान्पुरुषो नरः ॥१९
त्रिभिः शतैः षष्टियुक्तैस्त्रिरावृत्या तथा पुनः ।
रुद्राक्षैरुपवीतं च निर्मीयाद्भक्तितत्परः ॥२०
शिखायां च त्रयं प्रोक्तं रुद्राक्षाणां महेश्वरि ।
कर्णयोः षट् च षट् चैव वामदक्षिणयोस्तथा ॥२१

कृमियों से खांये हुए, छिन्न-भिन्न, काँटे रहित, गोलाई से रहित तथा व्रणयुक्त, यह छै प्रकार से रुद्राक्ष त्याज्य हैं ।१५। जिस रुद्राक्ष में स्वयं छेद हो, वही उत्तम है, मनुष्य के द्वारा जिसमें छेद किया गया हो उसे मध्यम समझो ।१६। रुद्राक्ष धारण से महा पाप भी दूर हो जाते हैं, ११ सौ रुद्राक्ष धारण करने वाला मनुष्य रुद्र स्वरूप हो जाता है ।१७। ११ सौ रुद्राक्षों के धारण का जो फल होता है, वह सौ वर्षों में भी वर्णन नहीं हो सकता ।१८। साढ़े पाँच सौ रुद्राक्षों को जो धारण करता है, वह पुरुष कहा गया है ।१९। तीन सौ आठ रुद्राक्षों की तीन लड़ बनाकर यज्ञोपवीत धारण पूर्वक भक्ति करने वाला ।२०। शिखा में तीन, कानों में ६ दोनों ओर पहिनें ।२१।

शतनेकोत्तरं कंठे बाह्वोर्वै रुद्रसंख्यया ।
कूर्परद्वारयोस्तत्र मणिबंधे तथा पुनः ।२२
उपवीते त्रयं धार्यं शिवभक्तिरतै र्नर ।
शेषानुर्वरितान्पंच सम्मितान्धारयेत्कटौ ।।२३
एतत्संख्याधृता येन रुद्राक्षाः परमेश्वरि ।
ततद्रूप तु प्रणम्यं हि स्तुत्यं हि सर्वैर्महेशवत् ।।२४
एवंभूतं स्थितं ध्याने यदा कृत्वासने जनम् ।
शिवेति व्याहरंश्चैव दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ।।२५
शताधिकसहस्रस्य विधिरेष प्रकीर्त्तितः ।
तदभावे प्रकारोऽन्य शुभः संप्रोच्यते मया ।।२६
शिखायामेकरुद्राक्षं शिरसा त्रिशतं वहेत् ।
पंचाशच्च गले दध्याद्बाह्वोः षोडश षोडश ।।२७
मणिबंधे द्वादश द्विस्कंधे पचशतँ वहेत् ।
अष्टत्तरशतैर्माल्यमुहवीतं प्रकल्पयेत् ।।२८

कण्ठ में एक सौ एक, बाँहों में ग्यारह और इसी प्रकार कूर्र और मणिवन्ध में करे ।२२। यज्ञोपवीत में तीन और कटि में पाँच इस प्रकार रुद्राक्ष धारण करने वाले का स्वरूप शिवजी के समान होता है और वह स्तुति योग्य हो जाता है ।२३-२३। इस प्रकार ध्यान, में स्थित, आसन पर बैठकर शिव नाम का उच्चारण करते हुए मनुष्य का दर्शन कर प्राणी पाप-मुक्त हो जाता है ।२५। यह ११ सौ की विधि कही गई है, ऐसा न कर सकने वालों के लिये जो विधि है, वह कहता हूँ ।२६। शिखा में एक, शिर में तीस, कण्ठ में पचास और दोनों भुजाओं में सोलह २ धारण करे ।२७। मणिवन्ध में बारह, स्कन्ध में पाँच सौ तथा यज्ञोपवीत एक सौ आठ का बनावें ।२८।

एवं सहस्ररुद्राक्षान्धारयेद्यो दृढव्रतः ।
तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः ।।२९
एकं शिखायां रुद्राक्षं चत्वारिंशत्तु मस्तके ।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु वक्षस्यष्टोत्तरं शतम् ।।३०

एकैकं कर्णयोः षट् षट् बाह्वोः षोडश षोडश ।
करयोरविमानेन द्विगुणेन मुनीश्वर ॥३१
संख्या प्रीतिधृता येन सोऽपि शैवजनः परः ।
शिववत्पूजनीयो हि वंद्या सर्वैरभीक्ष्णशः ॥३२
शिरसीशानमंत्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च ।
अघोरेण गले धार्यं तेनैव हृदयेऽपि च ॥३३
अघोरबीजमंत्रेण करयोधरियेत्सुधीः ।
पंचदशाक्षग्रथितां वामदेवेन चोदर ॥३४
पंचब्रह्माभिरगैश्च त्रिमालां पंचसप्त च ।
अथवा मूलमत्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत् ॥३५

इस प्रकार दृढ़व्रती होकर जो हजार रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्र के समान होता है और सब देवता उसे नमस्कार करते हैं ॥२९॥ शिखा में एक, मस्तक में चालीस, कण्ठ में बत्तीस और हृदय में एक सौ आठ ॥३०॥ दोनों कानों में ६-६, भुजाओं में सोलह-सोलह हाथ में बारह या चौबीस ॥३१॥ जिसने प्रीति सहित धारण किये हैं वह भी शिव भक्त है तथा सभी के द्वारा वन्दनीय और पूजनीय है ॥३२॥ ईशान मन्त्र से शिर में तत्पुरुष मन्त्र से कानों में अघोर मन्त्र से कण्ठ और हृदय में रुद्राक्ष धारण करे ॥३३॥ हाथों में अघोर और बीज मन्त्र से तथा पन्द्रह रुद्राक्ष उदर में वामदेव मन्त्र से धारण करे ॥३४॥ सद्योजातादि पञ्च ब्रह्म मन्त्रों द्वारा अन्य अङ्गों में तीन, पाँच या सात माला धारण करे अथवा मूल मन्त्र से सभी रुद्राक्षों को धारण करे ॥३५॥

मद्यं मासं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च ।
श्लेष्मांतकं विड्वराहं भक्षणे वजयेत्ततः ॥३६
वलक्षं रुद्राक्षं द्विजतनुभिरेवेह विहितं ।
सुरक्तं क्षत्राणां प्रमुदितमुमे पीतमसकृत् ॥३७
ततो वैश्यधार्यं प्रतिदिवसमावश्यकमहो ।
कथा कृष्णं शूद्रैः श्रुतिगतिमार्गोऽयमगजे ॥३८

वर्णी वनो गृहयतिर्नियमेन दध्यादेतद्रहस्यपरमो न हि जातु तिष्ठेत्
रुद्राक्षधारणमिदं सुकृतश्चलभ्यंत्यक्त्वेदमेतदखिलान्नकान्प्रेयांति ।।

आदावामलकास्ततो लघुतरा रुग्णास्ततः कण्टकैः ।
सदष्टाः कृमिभिस्तनूपकरणच्छिद्रेण हीनास्तथा ।
धार्या नैव शुभेत्सुभिश्वणकवद्रुद्राक्षमप्यंततो-
रुद्राक्षो मम लिंगमङ्गलमुमे सूक्ष्म प्रशस्त सदा ।।३६
सर्वाश्रमाणां वर्णानां स्त्रीशूद्राणां शिवाज्ञया ।
धार्याः सदैव रुद्राक्षा यतीनां प्रणवेन हि ।।४०
दिवा विभ्रद्रात्रिकृतै रात्रौ बिभ्रद्दिवाकृतैः ।
प्रातर्मध्यह्नसायाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ।।४१
ये त्रिपुण्ड्रधरा लोके जटाधारिण एव ये ।
ये रुद्राक्षधरास्ते वै यमलोकं प्रयांति न ।।४२

मद्य, माँस, लशुन, प्याज, सेंजना, श्लेषान्तक आदि का सेवन न करे ।।३७।। ब्राह्मणों के लिए श्वेत, क्षत्रियों को रक्त, वैश्यों को पीत तथा शूद्र को काले रङ्ग का रुद्राक्ष धारण करना हितकर है ।३७। सभी वर्ण तथा यती इसे धारण कर, यह रुद्राक्ष बड़े पुण्य से प्राप्त होता है, इसके त्याग से नरक की प्राप्ति होती है ।३८। आमले से छोटे, खण्डिन, काँटे रहित, छिद्र रहित, कीड़ों से खोये हुए रुद्राक्षों का धारण मंगल-कामना वाला न करे । चने के समान छोटे रुद्राक्ष की प्रशंसा की गई है । शिवजी का कथन है कि यह हमारा चिन्ह स्वरूप है, इसे, सदा धारण करे ।३६। सभी आश्रमों, वर्णों, स्त्रियों और शूद्रोंको भी रुद्राक्ष धारण करना उचित है । यतियोंके लिए प्रणव पूर्वक धारण का उपदेश है ।४०। दिन में धारण करने से रात्रि के, रात्रि में धारण करने से दिन के तथा प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल के सभी पाप नष्ट होते हैं ।४१। त्रिपुण्डधारी, जटाधारी, रुद्राक्षधारी जीव यमलोक को कभी प्राप्त नहीं होते ।४२।

रुद्राक्षमेकं शिरसा बिभर्ति तथा त्रिपुण्ड्रं च ललाटमध्ये ।
पंचाक्षरतेहिजपंतिमन्त्रं पूज्याभवद्भिःखलुतेहिसाधवः ।।४३

यस्यांगे नास्ति रुद्राक्षस्त्रिपुण्ड्रं भालपट्टके ।
मुखे पंचाक्षरं नास्ति मतानय यमालयम् ।।४४
ज्ञात्वा ज्ञात्वा तत्प्रभावं भस्मरुद्राक्षधारिणः ।
ते पूज्या. सर्वदास्माकं नो नेतव्याः कदाचन ।।४५
एवमाज्ञापयामास कालोऽपि निजकिङ्करान् ।
तथेति मत्वा ते सर्वे तूष्णीमासन्सुविस्मिताः ।।४६
अत एव महादेवि रुद्राक्षोऽप्यघनाशनः ।
तद्धरो मत्प्रियः शुद्धोऽत्यघवाननि पार्वति ।।७
सुरासुराणां सर्वेषां वंदनीयः सदा स वै ।
पूजनीयो हि दृष्टस्य पापहा च यथा शिवः ।४८
ध्यानज्ञानावमुक्तोऽपि रुद्राक्षं धारयेत्तु यः ।
सर्वपापनिर्विमुक्तः स याति परमां गतिम् ।।४९

जो महात्मा शिर में एक रुद्राक्ष और मस्तक पर त्रिपुण्ड्र धारण करता है, तथा पंचाक्षर मन्त्र को जपता है वह पूजनीय है ।४३। "जिस के देह में रुद्राक्ष, माथे पर त्रिपुण्ड तथा मुख में पंचाक्षर मन्त्र नहीं है, उसे मेरे यमलोक को प्राप्त कराओ ।४४। भस्म और रुद्राक्ष धारण करने वालों का कर्म-प्रभाव को जानकर उन्हें पूजनीय जान हमारे लोक में मत लाओ ।४५। यमराज ने इस प्रकार धषने सेवकों को आदेश दिया, जिसे सुनकर वे विस्मय को प्राप्त होकर मौन हो गये ।४५। हे महादेवीजी ! इस प्रकार रुद्राक्ष महापातक को नष्ट करने में समर्थ है । यदि उनका धारण करने वाला महापापी हो तो भी ।४७। वह देवता दैत्य सभी के लिए वन्दनीय है । वह शिवजी के समान पापों का नाशक है ।४८। ध्यान और ज्ञान से अवमुक्त होकर भी जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परम गति प्राप्त करता है ।४९।

रुद्राक्षेण जपन्मन्त्रं पुण्य कोटिगुणं भवेत् ।
दशकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः ।।५०
यावत्कालं हि जीवस्य शरीरस्थो भवेत्स वै ।
यावत्कालं स्वल्पमृत्युनं तं देवि विबाधते ।।५१

त्रिपुण्ड्रेण च संयुक्तं रुद्राक्षाबिलसांगकम् ।
मृत्युंजयं जपतं च दृष्ट्वा रुद्रफलं लभेत् ।५२
पंचदेवप्रियश्चैव सर्वदेवप्रियस्तथा ।
सर्वमंत्राञ्जपेद्भक्तो रुद्राक्षमालया प्रिये ।।५३
विष्णवादिदेवभक्ताश्च धारयेयुर्न संशयः ।
रुद्रभक्तो विशेषेण रुद्राक्षान्धारयेत्सदा ।।५४
रुद्राक्षमालिनं दृष्ट्वा भूतप्रेतपिशाचकाः ।
डाकिनी शाकिद्री चैव ये चान्ये द्रोहकारकाः ।।५५
कृत्रिमं चैव यत्किंचिदभिचादिक च यत् ।
तत्सर्वं दूरतो याति दृष्ट्वा शंकितविग्रहम् ।।५६

रुद्राक्ष से मन्त्र जपने से कोटि गुण पुण्य मिलता है और उसके धारण से दश-कोटि गुण पुण्य प्राप्त होता है ।५०। जीवन में स्वस्थ रहता है, उसे अकाल मृत्यु कभी नहीं होती ।५१। जिसके शरीर में त्रिपुण्ड सहित रुद्राक्ष शोभित है यथा जो मृत्युंजय का जप करता है । उसके दर्शन से रुद्र के दर्शन का फल प्राप्त होता है ।५२। पाँच देवताओं की उपासना करने वाले को सब देवताओं के प्रिय रुद्राक्ष की माला से जप करना चाहिये ।५३। विष्णु आदि देवताओं के भक्त भी इसे धारण करें ।५४। रुद्राक्ष की माला धारण किये हुए देखकर भूत, प्रेत, पिशाच डंकिनी, शंकिनी अथवा अन्य द्रोही जीव ।५५। तथा कुछ कृत्रिम अभिचारादि भी दूर से ही भाग जाते हैं ।५६।

रुद्राक्षमालिनं दृष्टवा शिवो विष्णुः प्रसीदति ।
देवी गणपतिः सूर्य्यः सुराश्चन्येऽपि पावति ।।५७
शिवस्यातिप्रियो ज्ञेयौ भस्मरुद्राक्षधारिणौ ।
तद्धारणप्रभावाद्धि भुक्तिर्मुक्तिर्न सशयः ।।५८
भस्मरुद्राक्षधारी यः शिवभक्तः स उच्यते ।
पञ्चाक्षरजपासक्तः परिपूर्णश्च सन्मुखे ।।५९
बिना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया ।
पूजितोऽपि महादेवो नाभीष्टफलदायकः ।।६०

तत्सर्वं च समाख्यातं यत्दृष्टं हि मुनीश्वर ।
भस्मरुद्राक्षमाहात्म्यं सर्बकाम् समृद्धिदम् ।
एतद्यः शृणुयान्नित्यम् माहात्म्यम् परमं शुभम् ।
रुद्राक्षयस्ममनोर्भक्त्या सर्वात्कामानवाप्नुयात् ।।६२
इह सर्वसुखं भुक्त्वा पुत्रपौत्रादिसयुतः ।
लभेत्परत्र सन्मोक्षं शिवस्यातिप्रियो भवेत् ।।६३
विद्येश्वरसंहियेयं कथिता वो मुनीश्वराः ।
सर्वसिद्धिप्रदा नित्यम् मुक्तिदा शिवशासनात् ।।६४

रुद्राक्ष की मात्रा धारण करने वाले को देखकर शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य तथा अन्य देवगण प्रसन्न होते हैं ।५७। भस्म रुद्राक्षधारी को शिव का अति प्रिय जानो । इनके धारण से भुक्ति-मुक्ति प्राप्त होती है । ।५८। भस्म रुद्राक्षधारी मनुष्य शिव-भक्त कहा जाता है । पंचाक्षर मन्त्र में प्रीति करने वाला पुरुष परिपूर्ण है ।५९। भस्म, त्रिपुण्ड तथा रुद्राक्ष की माला के बिना पूजन करने से महादेव अभीष्ट फल प्रदान नहीं करते ।६०। हे मुनिवरो ! तुम्हारे प्रश्न का पूर्ण समाधान कर दिया । भस्म और रुद्राक्ष का महात्म्य सभी कामनाओं और समृद्धि का देता है ।६१। इस अत्यन्त शुभ माहात्म्य को जो मनुष्य नित्यप्रति सुनते तथा रुद्राक्ष और भस्म में प्रीति करते हैं, वे सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होते हैं ।६२। इस लोक में वे सभी सुखों को भोगते हुए पुत्र-पौत्रादि से युक्त होते हैं और अन्त में शिवजी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं ।६३। हे मुनियो ! यह विद्येश्वर संहिता तुम्हारे प्रति कही गई है । शिवजी की आज्ञा से यह सम्पूर्ण सिद्धि और मुक्ति देने वाली है ।६४।

रुद्र संहिता—सृष्टि—खण्ड

* नारद का काम विजय से अहंकार करना *

एकस्मिन्समये विप्रा नारदो मुनिसत्तमः ।
ब्रह्मपुत्रो विनीतात्मा तपोर्थं मन आदधे ।।१
हिमशैलगुहा काचिदेका परमशोभना ।
यत्समीपे सुरनदी सदा वहति वेगतः ।।२
तत्राश्रमो महादिव्यो नानासोभासतन्वितः ।
तपोर्थं स ययौ तत्र नारदो दिव्यसशनः ।।३
तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलस्तेपे स सुचिरं तपः ।
बद्ध्वासनं दृढं मौनी प्राणानायम्य शुद्धधीः ।।४
चक्रे मुनिः समाधि तमहंब्रह्मेति यत्र ह ।
विज्ञान भवति ब्रह्मसाक्षात्कारकरं द्विजाः ।।५
इत्थं तपति मस्मिन्वै नारदे मुनिसत्तमे ।
चकंपेऽथ शुनाशीरो मनः संताप विह्वलः ।।६
मनसीति विचित्यासौ मुनिर्मे राज्यमिच्छति ।
तद्विघ्नकरणार्थं हि हरिर्यत्नमियेष सः ।।७

सूतजी ने कहा—हे ब्राह्मणो ! एक समय की बात है, ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी ने तप करने की इच्छा की ।१। हिमालय पर्वत की एक अत्यन्त सुशोभित गुफा के किनारे श्री गङ्गाजी अत्यन्त वेग से बह रही थीं ।२। वहाँ अनेक प्रकार से सुशोभित एक दिव्य आश्रम है, नारदजी उसी स्थान पर तप करने के लिए गये ।३। उस स्थान पर मुनि शार्दूल ने बहुत समय तक तप किया तथा मौन रहकर आसन लगाया और प्राणायाम कर पवित्र मन से ।४। समाधि लगाई, जिसमें 'अहं ब्रह्म' रूप विज्ञान ब्रह्म से साक्षात्कार करने वाला है ।५। इसी प्रकार मुनिवर नारदजी ने तप का आरम्भ किया, जिससे कंपित हुआ इन्द्र मनके सन्ताप

से अत्यन्त विकल हुआ ।६। और सोचने लगा कि कदाचित यह मेरे राज्य की कामना करते हैं, इसलिए वह उनके तप में विघ्न उपस्थित करने को उद्यत हुए ।७।

सस्मार स स्मरं शक्रश्चेतसा देवनायकः ।
आजगाम द्रुतं कामः समधीमहिषीसुतः ॥८
अथागतं स्मरं दृष्ट्वा संबोध्य सुरराट् प्रभुः ।
उवाच तं प्रपश्यामु स्वार्थे कुटिलशेमुषिः ॥९
मित्रवय्य महावीर सर्वदा हितकारक ।
शृणु प्रीत्या वचो मे त्वं कुरु साहाय्यमात्मना ॥१०
त्वद्बलान्मे बहूनाश्च पतोगर्वो विनाशितः ।
मद्राज्यस्थिरता मित्र त्वदनुग्रहतः सदा ॥११
हिमशैलगुहायां हि मुनिस्तपति नारदः ।
मनसोद्दिश्य विश्ववेशं महासंयमवान्दृढ़ः ॥१२
याचेन्न विधितो राज्यं स ममेनि वि शंकितः ।
अद्यैव गच्छ तत्र त्वं तत्तपोविघ्नमाचर ॥१३
इत्याज्ञप्तो महेन्द्रेण स कामः समधुप्रियः ।
जगाम तत्स्थलं गर्वादुपायं स्वञ्चकार ह ॥१४
रचयामास तत्राशु स्वकलाः सकला अपि ।
वसंतोऽपि स्वप्रभावं चकार विविधं मदात् ॥ ॥१५

उस समय उन्होंने कामदेव का स्मरण किया और तभी वह समान बुद्धि वाला कामदेव आ पहुँचा ।८। उसे वहाँ आया हुआ देखकर कुटिल बुद्धि इन्द्र ने उससे शीघ्रता से कहा ।९। इन्द्र ने कहा—हे मित्र ! मेरा हित करने की इच्छा से तुम मेरी बात सुनकर सहायता करो ।१०। तुम्हारी सहायता से मैंने अब तक बहुत से तपोधनों का गर्व नष्ट कर डाला । तुम्हारी कृपा से ही मेरा राज्य स्थिर है ।११। हिमालय की गुफा में मुनिवर नारदजी तपस्या कर रहे हैं, शिव की आराधना करते हुए महान् संयम में दृढ़ हैं ।१२। मुझे शंका है कि वह ब्रह्माजी से मेरा राज्य न माँग लें, इसलिए तुम तत्काल वहाँ जाकर उनके तप को भङ्ग

कर दो ।१३। इन्द्र की बात सुनकर कामदेव अत्यन्त गर्व पूर्वक चल पड़ा और वहाँ जाकर तप भृङ्ग करने का उपाय सोचने लगा ।१४। वहाँ उसने अपनी सम्पूर्ण कला प्रदर्शित की। बसन्त ने भी अपना मदयुक्त प्रभाव दिखाया ।१५।

न बभूव मुनेश्चेतो विकृतं मुनिसत्तमाः ।
भ्रष्टो बभूव पद्गर्वो महेशानुग्रहेण ह ।।१६
शृणुतादरतस्हव कारणं शौनकादयः ।
ईश्वरानुग्रहेत्राण न प्रभावः स्मरस्य हि ।।७१
अत्रैव शम्भुनाऽकारि सुतपश्चृ स्मरारिणा ।
अत्रैव दग्धस्तेनाशु कामो मुनितपोपहः ।।१८
कामजीननहेतोर्हि रत्या संप्रार्थितैः सुरैः ।
सम्प्रार्थित उवाचेदं शङ्करो लोकशंकर। ।।१९
कंचित्समयमासाद्य जीवष्यतिः सुराःस्मरः ।
परंत्विह स्मरोपाश्चयलिष्यति न कश्चन ।।२०
इह यावद्दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वाऽमराः सदा ।
कामबाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्संशयम् ।।२१

मुनिवरो ! इतना करने पर भी नारदजी के मन में कोई विकार नहीं आ सका और शिवाजी के अनुग्रह से इन्द्र का अभिमान चूर्ण हो गया ।१६। हे मुनियो ! इसका कारण भी आदर पूर्वक श्रवण करो । यह कामदेव का प्रभाव नहीं, ईश्वर का ही अनुग्रह है ।१७। इसी स्थान पर कामदेव के शत्रु शंकर ने घोर तप किया था और मुनि के तप में विघ्नार्थ उपस्थित कामदेव यहीं भस्म हुआथा ।१८। उस समय देवताओं ने कामदेव के पुनर्जीयन की याचना शंकर से की । इस पर लोकों के कल्याण करने वाली शिवजी ने उनसे कहा ।१९। हे देवगण ! कामदेव कुछ समय पश्चात् जीवित हो जायगा, परन्तु इस स्थान पर उसका कोई प्रभाव कभी भी न होगा ।२०। हे देवगण ! तुम्हें यहाँ की जो पृथ्वी दिखाई दे रही है, उसमें स्थित होने पर कभी कामदेव का प्रभाव नहीं होगा, इसमें संशय नहीं ।२१।

इति शंभूक्तितः कामो मिथ्यात्मगतिकस्तदा ।
नारदे स जगामाशु शिवमिन्द्रसमीपतः ॥२२
आचख्यौ सर्ववृत्तांतं प्रभावं च मुनेः स्मरः ।
तदाज्ञया ययौ स्थानं स्वकीयं स मधुप्रियः ॥२३
विस्मितोऽभूत्सुराधीशः प्रशंसाथ नारदम् ।
तद्वृत्तांतानभिज्ञौ हि मोहितश्शिवमायया ॥२४
दुर्ज्ञेया शांभवी माया सर्वेषां प्रणानामिह ।
भक्तं विनार्पिताष्मनं तवा संमोह्यते जगत् ॥२५
नारदोऽपि चिरं तस्थौ तत्रेशानुग्रहेण ह ।
पूर्णं मत्वा तपस्तत्स्वं विरराम ततो मुनिः ॥२६
कामाज्जयं निज मत्वा गर्वितोऽभून्मुनीश्वरः ।
वृथैव विगतज्ञानः शिवमायाविमोहितः ॥२७

इस शिवोक्ति से कामदेव को अपनी मिथ्या गति का ध्यान हुआ और वह नारदजी के पास से पलायन कर इन्द्र के पास पहुँचा ।२२। उन्हें सब वृतान्त सुनाया और आज्ञा लेकर बसन्त के सहित अपने स्थान को गया ।२३। इन्द्र अत्यन्त विस्मित हुए और नारदजी की प्रशंसा करने लगे, क्योंकि पहले वह शिवमाया से मोहित थे और उस रहस्य को न जानते थे ।२४। सभी प्राणियों के लिये शिवमाया का ज्ञान अत्यन्त कठिन है। भक्त के सिवाय वह सम्पूर्ण विश्व को मोहित किये हुए हैं ।२५। शिव कृपा से नारदजी उस स्थान पर बहुत काल तक रहे, उन्होंने अपनी तपस्या को पूर्ण समझा, तभी उससे विराम किया ।२६। मुनि को अहंकार हुआ कि हमने कामदेव जीत लिया, वे शिव माया से मोहित होने के कारण ज्ञान-विहीन हो गये ।२७।

धन्या धन्या महामायाशांभवी मुनिसत्तमाः ।
तद्गति न हि पश्यंति विष्णुब्रह्मादयोपि हि ॥२८
तया संमोहितोऽतीव नारदो मुनिसत्तमः ।
कैलासं प्रययौ शीघ्रं स्ववृत्तं गदितुं मदी ॥२९
रुद्रं नत्वाऽब्रवीत्सर्वं स्ववृत्तङ्गर्ववान्मुनिः ।

मत्त्वात्मानं महात्मानं स्वप्रभुञ्च स्मरञ्जयम् ॥३०
तच्छ्रुत्वा शङ्करः प्राह नारदं भक्तवत्सलः ।
स्वमायामोहितं हेत्वनभिज्ञं भ्रष्टचेतसम् ॥३१
हे तात नारद प्राज्ञ धन्यस्त्वं शृणु मद्वचः ।
वाच्यमेवं न कुत्रापि हरेरग्रे विशेषतः ॥३२
पृच्छमानोऽपि न ब्रूयाः स्ववृत्तं मे यदुक्तवान् ।
गोप्यं गोप्यं सर्वथा हि नैव वाच्यं कदाचन ॥३३
शास्म्यहं त्वां विशेषेण मम प्रियतमो भवान् ।
विष्णुभक्तो यस्त्वं हि तद्भक्तोऽतीव मेऽनुगः ॥३४
शास्ति स्मेत्थञ्च बहुशो रुद्रः सूतिकरः प्रभुः ।
नारदो न हितं मेने शिवमायाविमोहितः ॥३५

हे मुनियो ! शंकर की महामाया को धन्य है, उनकी गति को ब्रह्मा विष्णु आदि कोई भी जानने में समर्थ नहीं हैं ॥२८॥ उस माया ने नारद जी को अत्यन्त मोहित कर लिया, इसलिए वे कामदेव पर विजय प्राप्त करने वाले अपने वृत्तान्त को कहने के लिए कैलाश पहुंचे ॥२९॥ वहाँ शिवजी को प्रणाम कर अहंकारपूर्वक सब वृत्तान्त सुनाया तथा अपने को महान् काम-विजेता समझकर गर्व में चूर हो गये ॥३०॥ नारदजी शिव-माया से मोहित होकर भ्रष्ट चित्त हो रहे थे, उनकी बात सुनकर भक्त-वत्सल भगवान् शिवजी ने कहा ॥३१॥ वे बोले—हे नारदजी ! तुम धन्य हो । मेरी बात सुनो, तुमने जो बात मुझसे कही है, उसे विष्णु के समक्ष न कहना ॥३२॥ वे तुमसे पूछें तो भी यह बात उनसे न कहना, इसे नितान्त गोपनीय रखना, किसी प्रकार भी प्रकट न करना ॥३३॥ तुम मेरे लिए प्रिय हो, इसलिए तुमसे कहता हूँ । तुम विष्णु-भक्त हो तथा विष्णु-भक्त मेरे अनुगामी होते हैं ॥३४॥ इस प्रकार शिवजी ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु शिवमाया से मोहित होने के कारण नारदजी ने इसे अपने लिए हितकर नहीं समझा ॥३५॥

प्रबला भाविनी कर्मगतिर्ज्ञेया विचक्षणैः ।
न निवार्या जनैः कैश्चिदपीच्छा सैव शांकरी ॥३६

ततः स मुनिवर्यो हि ब्रह्म लोकं जगाम ह ।
विधि नत्वाऽब्रवीत्कामजयं स्वस्य तपोबलात् ॥३७
तदाकर्ण्य विधिः सोऽथ स्मृत्वा शंभुपदाम्बुजम् ।
ज्ञात्वा सर्वं कारणं तन्निषिषेध सुत तदा ॥३८
मेने हितं न विध्युक्तं नारदो ज्ञानिसत्तमः ।
शिवमायामोहितश्च रूढचित्तमदाकुरः ॥३९
शिवेच्छा यादृशी लोके भवत्येव हि सा तदा ।
तदधीनं जगत्सर्वं वचस्तंत्यां स्थितं यतः ॥४०
नारदोऽथ ययौ शीघ्रं विष्णुलोकं विनष्टधीः ।
मदांकुरमना वृत्तं गदितुं स्वं तदग्रतः ॥४१
आगच्छंतं मुनिं दृष्ट्वा नारदं धिष्णुरादरात् ।
उत्थित्वाग्र गतोऽरं तं शिश्लेष ज्ञातहेतुकः ॥४२
स्वासने समुपावेश्य स्मृत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
हरिः प्राह वचस्तथ्यं नारदं मदनाशनम् ॥४३

कर्म की गति का ज्ञान चतुर पुरुषों को ही होता है । शिवजी की इच्छा को निवारण करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है ॥३६॥ नारदजी ब्रह्मलोक को गये और ब्रह्माजी को प्रणामकर अपने तपोबल के प्रभाव से कामदेव को जीतने का वृत्तान्त उन्हें सुनाया ॥३७॥ यह सुनकर ब्रह्माजी शिवजी के चरण-कमलों को प्रणाम कर, सब कुछ जानकर अपने पुत्र से निषेधात्मक स्वर में बोले ॥३८॥ नारदजी ने इसे अपने हित में नहीं समझा, क्योंकि वे शिवमाया से मोहित थे और उनके चित्त में मद का अंकुर लग गया था ॥३९॥ शिवजी की जैसी इच्छा होती है वैसा ही संसार में होता है, सम्पूर्ण विश्व उनके वचन में स्थित होने से पूर्णतया उनके आधीन है ॥४०॥ बुद्धि नष्ट होने के कारण नारदजी के हृदय में काम विजय का अहंकार भरा था, उसे कहने के लिए वे विष्णु-लोक के लिए चल पड़े ॥४१॥ भगवान् विष्णु ने नारदजी को आया हुआ देखा तो शीघ्रतापूर्वक उठकर उनका सत्कार किया । वे भी नारदजी के आगमन का कारण जानते थे ॥४२॥ उन्होंने नारदजी को अपने आसन पर

बैठाया और शिवजी के चरण-कमल का ध्यान कर नारदजी का मद नष्ट करने के लिए बोले ॥४३॥

कुत आगम्यते तात किमर्थमिह चागतः ।
धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तीर्थोऽहं तु तवागमात् ॥४४
विष्णुवाक्यमिति श्रुत्वा नारदो गर्वितो मुनिः ।
स्ववृत्तं सर्वमाचष्ट समदं मदमोहित ॥४५
श्रुत्वा मुनिवचो विष्णुः समदं कारण ततः ।
ज्ञातवानखिलं स्मृत्वा शिवपादांबुजं हृदि ॥४६
तुष्टाव गिरिशं भक्त्या शिवात्मा शैवराड्ढरिः ।
सांजलिर्विसुधीनम्रमस्तकः परमेश्वरम् ॥४७
देव देव महादेव प्रसीद परमेश्वर ।
धन्यस्त्वं शिव धन्या ते माया सर्वविमोहिनी ॥४८
इत्यादि स्तुतिं कृत्वा शिवस्य परमात्मनः ।
निमील्य नयने ध्यात्वा विरराम पदाम्बुजम् ॥४९
यत्कर्त्तव्यं शंकरस्य स ज्ञात्वा विश्वपालकः ।
शिवशासनतः प्राह हृदाऽथ मुनिसत्तमम् ॥५०

विष्णु ने कहा—हे नारदजी ! आप इस समय कहाँ से और किस कारण पधारे हैं ? आप धन्य हैं, आपके आगमन से मैं पवित्र होगया हूँ ॥४४॥ विष्णु की बात सुनकर नारदजी और भी अहं में भर गये और मद-मोह से पूर्ण अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया ॥४५॥ नारदजी के अभिमानयुक्त वचन सुन कर विष्णु सब कारण को जानते हुए, शिव का हृदय में ध्यान कर ॥४६॥ अत्यन्त भक्तिपूर्वक शिवात्मा विष्णु शिवजी की स्तुति करने लगे तथा श्रद्धाञ्जलि पूर्वक मस्तक झुकाते हुये बोले ॥४७॥ विष्णु ने कहा—हे देव-देव महादेव ! आप धन्य हैं, सबको मोह लेने वाली आपकी माया भी धन्य है । आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों ॥४८॥ इस प्रकार स्तुति कर, नेत्र बन्द किये, शिवजी के चरण कमलों का ध्यान करते हुए मौन हो गये ॥४९॥ शिवजी की जो इच्छा है, उसे पूर्णतया जानते हुए विश्व-पालक विष्णु नारदजी के प्रति कहने लगे ।५०।

धन्यस्त्वं मुनिशार्दूल तपोनिधिरुदारधीः ।
भक्तित्रिकं न यस्यास्ति काममोहादयो मुने ॥५१
विकारास्तस्य सद्यो वै भवंत्यखिलदुःखदाः ।
नैष्ठिको ब्रह्मचारी त्वं ज्ञानवाग्यवान्सदा ॥५२
कथं कामविकारी स्या जन्मनाविकृतः सुधीः ।
इत्याद्युक्तं वचो भूरि श्रुत्वा स मुनिसत्तमः ॥५३
विजहास हृदा नत्वा प्रत्युवाच वचो हरिम् ।
किंप्रभावः स्मरः स्वामिन्कृपा यद्यस्ति ते मयि ॥५४
इत्युक्त्वा हरिमानम्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥५५

विष्णुजी ने कहा—हे मुने ! हे उदार बुद्धि वाले ! हे तपोनिधे ! जिसके हृदय में त्रिदेवों की भक्ति नहीं, उसी को काम मोहादि अपना अधिकार करते हैं ॥५१॥ यह विकार उन्हीं को दुःख देने वाले हैं, आप तो सदा विज्ञान से सम्पन्न एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं ॥५२॥ काम का विकार आपको किस प्रकार सता सकता है ? आप तो जन्म से ही विकार रहित हैं, आपकी बुद्धि श्रेष्ठ है । भगवान् विष्णु के यह वचन नारदजी ने सुने ॥५३॥ तो हृदय में नमस्कार कर हँसते हुए भगवान् से बोले—प्रभो ! जबतक मेरे पर आपकी कृपा है, तब तक कामदेव मेरा क्या बिगाड़ सकता है ? ॥५४॥ यह कहकर भगवान् विष्णु को प्रणाम कर नारदजी अपने इच्छित स्थान के लिए प्रस्थान कर गये ॥५५॥

॥ नारद का मोह और शिवगणों को शाप ॥

सूत-सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तु ते ।
अद्भुतेयं कथा तात वर्णिता कृपया हि नः ॥१
मुनौ गते हरिस्तात किं चकार ततः परम् ।
नारदोऽपि गतः कुत्र तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ।
प्रत्युवाच शिवं स्मृत्वा नानासूतिकरं बुधः ॥३
मुनौ यदृच्छया विष्णुर्गते तस्मिन्हि नारदे ।
शिवेच्छया चकाराशु मायां मायाविशारदः ॥४

मुनिमार्गस्य मध्ये तु विरेचे नगरं महत् ।
शतयोजनविस्तारमद्भुतं सुमनोहरम् ॥५
स्वलोकादधिकं रम्य नानावस्तुविराजितम् ।
नरनारीविहाराढ्यं चतुर्वर्णाकुलं परम् ॥६
तत्र राजा शीलनिधिर्नामैश्वर्यसमन्वितः ।
सुतास्वयम्वरोद्युक्तो महोत्सवसमन्वितः ॥७

ऋषि बोले—हे सूतजी ! आपको प्रणाम है। आपने कृपापूर्वक यह अद्भुत कथा कही है ॥१॥ हे तात ! नारदजी चले गये तब विष्णु ने क्या किया ? नारदजी कहाँ गये ? यह सब हमको सुनाइये ॥२॥ व्यास जी ने कहा—पौराणिकों में श्रेष्ठ सूतजी उनकी बात सुनकर शिवजी की स्तुति कर प्रणाम पूर्वक कहने लगे ॥३॥ जब नारदजी वहाँ से चले गये तब शिवेच्छा जानकर विष्णुजी ने अपनी माया को प्रेरित किया ॥४॥ माया ने मुनि के मार्ग में एक नगर बनाया जो अत्यन्त मनोहर और सौ योजन विस्तार वाला था ॥५॥ अपने लोक से भी अधिक मनोहर, अनेक वस्तुओं से सुशोभित नर-नारियों के विहार से युक्त तथा चारों वर्णों से युक्त ॥६॥ वहां का राजा शीलनिधि था, वह अनेक ऐश्वर्यों से सम्पन्न एवं अपनी पुत्री के स्वयंवर महोत्सव से युक्त था ॥७॥

चतुर्दिग्भ्यः समायातैः संयुतं नृपनन्दनैः ।
नानावेषैः सुशोभैश्च तत्कन्यावरणोत्सुकैः ॥८
तत्तादृशं पुरं दृष्ट्वा मोहं प्राप्तोऽथ नारदः ।
कौतुकी तन्नृपद्वारं जगाम मदनैधितः ॥९
आगतं मुनिवर्यं तं दृष्ट्वा शीलनिधिर्नृपः ।
उपवेश्यार्चयांचक्रे रत्नसिंहासने वरे ॥१०
अथ राजा स्वतनयां नामतः श्रीमतीं वराम् ।
समानीय नारदस्य पादयोः समपातयत् ॥११
तत्कन्यां प्रेक्ष्य स मुनिर्नारदः प्राह विस्मितः ।
केयं राजन्महाभागा कन्या सुरसुतोपमा ॥१२
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राजा प्राह कृतांजलिः ।

दुहितेयं मम मुने श्रीमती नाम नामतः ॥१३
प्रदानसमयं प्राप्ता वरमन्वेषती शुभम् ।
सा स्वयम्वर संप्राप्ता सर्वलक्षण लक्षिता ॥१४
अस्या भाग्यं वद मुने सर्वं जातकमादरात् ।
कीदृशं तननेयं मे वरमाप्स्यति तद्वत ॥१५

सब ओर से राजागण आये हुए थे, वे कन्या को वरण करने की इच्छा से अनेक साज सज्जा सहित विराजमान थे ॥८॥ ऐसे नगर को देखकर नारदजी का मन मोहित हो गया और कौतुक जानने को उत्कंठा से तथा काम-मद से युक्त हुए वहाँ गये ॥९॥ मुनि श्रेष्ठ को आया हुआ देखकर शीलनिधि ने उ हैं रत्न जटित सिंहासन पर बैठाकर उनका पूजन किया ॥१०॥ तब राजा ने अपनी कन्या श्रीमती को नारदजी के चरणों में डाल दिया ॥११॥ उस कन्या को देखकर नारदजी कहनेलगे—राजन् ! देवकन्या के समान यह महाभागा कन्या कौन है ? ॥१२॥ राजा ने कहा—मुनिवर ! यह मेरी कन्या श्रीमती है ॥१३॥ यह वर की खोज में सम्पूर्ण लक्षणों वाले स्वयंवर को प्राप्त हुई है ॥१४॥ इसका जातक और भाग्य कथन कीजिये, यह कन्या कैसे वर को प्राप्त करेगी ? ॥१५॥

इत्युक्तो मुनिशार्दूलस्तामिच्छुः कामविह्वलः ।
समाभाष्य स राजनं नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥१६
सुतेयं तव भूपाल सर्वलक्षणलक्षिता ।
महाभाग्यवती धन्या लक्ष्मीरिव गुणालया ॥१७
सर्वेश्वरोऽजितो वीरो गिरीशसदृशो विभुः ।
अस्याः पतिर्ध्रुवं भावी कामजित्सुरसत्तमः ॥१८
इत्युक्त्वा नृपमामंत्र्य ययौ यादृच्छिको मुनिः ।
बभूव कामविवशः शिवमायाविमोहितः ॥१९
चित्ते विचिन्त्य स मुनिराप्नुयां कथमेनकाम् ।
स्वयम्वरे नृपाणामेकं मां वृणुयात्कथम् ॥२०
सौन्दर्यं सर्वनारीणां प्रियं भवति सर्वथा ।
तद्दृष्ट्वैव प्रसन्ना सा स्ववशा नात्र संशयः ॥२१

यह सुनकर नारदजी काम से व्याकुल होकर उसकी प्राप्ति की कामना कर, राजा से कहने लगे ॥१६॥ हे राजन् ! तुम्हारी यह कन्या सभी शुभ लक्षणों से सम्पन्न है। यह अत्यन्त भाग्यवती तथा धन्य जीवन है ॥१७॥ इसका पति सर्वेश्वर, अजेय, शिवजी के समान विभु, कामदेव का विजेता यथा देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होगा ॥१८॥ यह कहकर नारदजी स्वेच्छापूर्वक वहाँ से चल दिए तथा शिवजी की माया में पड़कर काम के वशीभूत हो गये ॥१९॥ वे मन में विचार करने लगे कि इस कन्या को किस प्रकार प्राप्त करूँ ? स्वयंवर में आये हुए इतने राजाओं को छोड़कर मुझे यह किस प्रकार वरण कर लेगी ? ॥२०॥ स्त्रियाँ सुन्दरता को बहुत चाहती हैं। मेरे रूप को देखकर तो वह प्रसन्न होगी ही नहीं, इसमें सन्देह नहीं है ॥२१॥

विधायेत्थं विष्णुरूपं ग्रहीतुं मुनिसत्तमः ।
विष्णुलोकं जगामाशु नारदा स्मरविह्वलः ॥२२
प्रणिपत्य हृषीकेशं वाक्यमेतदुवाच ह ।
रहसि त्वां प्रवक्ष्यामि स्ववृत्तांतमशेषतः ॥२३
तथेत्युक्ते तथाभूते शिवेच्छाकार्यकर्तरि ।
ब्रूहित्युक्तवति श्रीशे मुनिराह च केशवम् ॥२४
त्वदीयो भूपतिः शीलनिधिः स वृषतत्परः ।
तस्य कन्या विशालाक्षी श्रीमती वरवर्णिनी ॥२५
जगन्मोहिन्यभिख्या च त्रैलोक्येऽप्यतिसुन्दरी ।
परिणेतुमहं विष्णो तामिच्छाम्यद्य मा चिरम् ॥२६
स्वयंवरं चकारासौ भूपतिस्तनयेच्छया ।
चतुर्दिग्भ्यः समायाताः राजपुत्राः सहस्रशः ॥२७
यदि दास्यसि रूपं मे तदा तां प्राप्नुयां ध्रुवम् ।
त्वद्रूपं सा विना कंठे जयमालां न धास्यति ॥२८

इस प्रकार विचार कर काम से व्याकुल हुये नारदजी विष्णु का रूप ग्रहण करने के निमित्त विष्णुलोक पहुँचे ॥२२॥ वहाँ उन्हे प्रणाम कर बोले कि मैं आपसे एकान्त में कुछ कहना चाहता हूं ॥२३॥ इस प्रकार

शिवजी की इच्छा होने के कारण भगवान् ने नारदजी से बात पूछी तब उन्होंने विष्णुजी से कहा ॥२४॥ नारदजी ने कहा—राजा शीलनिधि आपके ही धर्म में तत्पर है। उसकी पद्मलोचनी कन्या श्रीमती वर ग्रहण करने की कामना कर रही है ॥२५॥ वह विश्व-मोहिनी और त्रैलोक्य में सर्वाधिक सुन्दरी है। हे विष्णो ! हे प्रभो ! मैं उसे अवश्य ही वरण करने की कामना करता हूँ ॥२६॥ शीलनिधि अपनी उस कन्या का स्वयंवर कर रहा है, उसके निमित्त हजारों राजपुत्र सब ओर से वहाँ आ रहे हैं ॥२७॥ यदि आप मुझे अपना रूप प्रदान कर दें तो वह कन्या मुझे अवश्य ही मिल जायगी। आपका रूप प्राप्त किये बिना उसकी जय-माला मेरे कण्ठ में नहीं पड़ सकेगी ॥२८॥

स्वरूपं देहि मे नाथ सेवकोऽहं प्रियस्तव ।
वृणुयान्मां यथा सा वै श्रीमती क्षितिपात्मजा ॥२९
वचः श्रुत्वा मुनेरित्थं विहस्य मधुसूदनः ।
शांकरीं प्रभुतां बुद्ध्वा प्रत्युवाच दयापरः ॥३०
श्रेष्ठदेशं मुने गच्छ करिष्यामि हितं तव ।
भिषग्वरो यथार्त्तस्य यतः प्रियतरोऽसि मे ॥३१
इत्युक्त्वा मुनये तस्मै ददौ विष्णुर्मुखं हरेः ।
स्वरूपमनुगृह्यास्य तिरोधानं जगाम सः ॥३२
एवमुक्तो मुनिर्हृष्टः स्वरूपं प्राप्य वै हरेः ।
मेने कृतार्थमात्मानं तद्यत्नं न बुबोध सः ॥३३
अथ तत्र गतः शीघ्रं नारदो मुनिसत्तमः ।
चक्रे स्वयम्वरं यत्र राजपुत्रैः समाकुलम् ॥३४
स्वयम्वरसभा दिव्या राजपुत्रसमावृता ।
शुशुभेऽतीव विप्रेन्द्रा यथा शक्रसभाऽपरा ॥३५

हे प्रभो ! आप मुझे अपना रूप दीजिये, मैं आपका परम प्रिय दास हूं। आप वही कीजिये जिससे वह राजकन्या मुझे प्राप्त हो जाय ॥२९॥ सूतजी ने कहा—नारदजी की बात सुनकर विष्णु हँसे और भगवान् शिव के प्रभुत्व का ध्यान कर नारदजी से दयापूर्वक कहने लगे ॥३०॥ विष्णु

जी ने कहा—हे मुनिवर ! आप अपने इच्छित देश को गमन करिये। आप मेरे लिये अत्यन्त प्रिय हैं, जैसे सद्वैद्य रोगी को उचित औषधि देता है, वैसे ही मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा ॥३१॥ इतना कहकर विष्णु ने नारदजी को बन्दर का स्वरूप प्रदान किया और उनका हित करने के लिए अन्तर्धान हो गये ॥३२॥ मुनि ने समझा कि हरिस्वरूप मिल गया वो बड़े प्रसन्न हुए और अपने को धन्य समझने लगे ॥३३॥ फिर वे शीघ्र ही वहाँ पहुंचे जहाँ राजपुत्रों के मध्य में राजकन्या का स्वयंवर हो रहा था ॥३४॥ वह स्वयंवर की सभा इन्द्र-सभा के समान सुशोभित एवं राजपुत्रों से व्याप्त थी ॥३५॥

तस्यां नृपसभायां वै नारदः समुपाविशत् ।
स्थित्वा तत्र विचिन्त्येति प्रीतियुक्तेन चेतसा ॥३६
मां वरिष्यति नान्य सा विष्णुरूपधरं ध्रुवम् ।
आननस्य कुरूपत्वं न वेद मुनिसत्तमः ॥३७
पूर्वरूपं मुनि सर्वेदृदृशुस्तत्र मानवाः ।
तद्भेदं बुबुधुस्ते न राजपुत्रादयो द्विजाः ॥३८
तत्र रुद्रगणौ द्वौ तद्रक्षणार्थ समागतौ ।
विप्ररूपधरौ गूढौ तद्भेद जज्ञतुः परम् ॥३९
मूढ मत्वा मुनि तौ तन्निकटं जग्मतुर्गणौ ।
कृतस्तत्रहासं वै भाषमाणौ परस्परम् ॥४०
पश्य नारदरूप हि विष्णोरिव महोत्तमम्
मुखं तु वानरस्येव विकट च भयंकरम् ॥४१
इच्छत्ययं नृपसुतां वृथैव स्मरमोहितः ।
इत्युक्त्वा सच्छलं वाक्यमुपहासं प्रचक्रतुः ॥४२

नारदजी उस सभा में जा पहुँचे और प्रीतियुक्त चित्त से विचार करने लगे ॥३६॥ मुझ विष्णु रूपधारी को यह अवश्य ही वरण कर लेगी, क्योंकि वे अपने कुरूपत्व के रहस्य से अनजाज थे ॥३७॥ सब मनुष्यों को नारदजी का पूर्व रूप ही दिखाई दिया, उनके कुरूप होने की बात किसी भी राजपुत्रादि को ज्ञात न हुई ॥३८॥ परन्तु वहाँ दो रुद्रगण ब्राह्मण

रूप धारण किये उपस्थित थे, वे इस गूढ़ रहस्य को जानते थे। नारदजी की रक्षा के लिए यह दोनों गण आये थे ॥३९॥ नारदजी को मूढ़ हुआ देखकर वे शिवगण उनके पास ही जा पहुंचे और परस्पर बातचीत करते हुए नारदजी की हँसी उड़ाने लगे ॥४०॥ देखो नारदजी का स्वरूप साक्षात् विष्णु के समान हो गया है। परन्तु मुख बानर के समान भयंकर है ॥४१॥ यह काम से मोहित होकर राजकन्या की व्यर्थ ही कामना करते हैं। इस प्रकार के छलपूर्ण वाक्योंसे वे उनकी हँसी उड़ाने लगे॥४२॥

न शुश्राम यथार्थंतु तद्वाक्यं स्मरविह्वलः।
पर्यैक्षच्छ्रीमतीं तां वै तल्लिप्सुर्मोहितो मुनिः ॥४३
एतस्मिन्नंतरे भूपकन्या चांतःपुरात्तु सा।
स्त्रीभिः समावृता तत्राजगाम वरवर्णिनी। ४४
मालां हिरण्मयीं रम्यामादाय शुभलक्षणा।
तत्र स्वयम्वरे रेजे स्थिता मध्ये रमेव सा॥४५
वभ्राम सा सभां सर्वा मालामादाय सुव्रता।
वरमन्वेषती तत्र स्वात्माभीष्टं नृपात्मजा ॥४६
वानरास्यं विष्णुतनुं मुनिं दृष्टवा चुकोप सा।
दृष्टिं निवार्य च ततः प्रास्थिता प्रीतमानसा ॥४७
न दृष्ट्वा स्ववरं तत्र त्रस्तासीन्मनसेप्सितम्।
अंतः सभा स्थिता कस्मिन्नर्पयामास न स्रजम् ॥४८
एतस्मिन्नंतरे विष्णुराजगाम नृपाकृतिः।
न दृष्टः कैश्चिदरैः केवलं सा ददर्श हि ॥४९
अथ सा तं समालोक्य प्रसन्नवदनाम्बुजा।
अर्पयायास तत्कंठे तां मालां वरवर्णिनी ॥५०

काम से भ्रमित नारदजी उनके वचनों को यथार्थ रूप से न सुन सके, राजकन्या को देखते ही उसके रूप पर व्याकुल हो उठे ॥४३॥ इसी बीच राजकन्या अनेक स्त्रियों के साथ अन्तःपुर से चल पड़ी ॥४४॥ वह सुलक्षणा हाथ में स्वर्णमाल धारण किये स्वयंवर स्थल में साक्षात् लक्ष्मी के समान खड़ी हुई ॥४५॥ वह श्रेष्ठ व्रत वाली कन्या

माला हाथ में लिये, सभा में फिरती हुई अपने अनुरूप वर की खोज करने लगी ॥४६॥ वह नारदजी के सम्पूर्ण देह को विष्णु के समान और मुख बानर जैसा देखकर अत्यन्त क्रोधित हुई और वहां से दृष्टि हटाकर प्रसन्न मन से आगे बढ़ी ॥४७॥ स्वयम्वर में कोई वर अपनी इच्छा के अनुकूल न पाकर, व्याकुलता पूर्वक सभा के मध्य में खड़ी होगई, उसने किसी के कण्ठ में माला नहीं डाली ॥४८॥ तभी मनुष्य-वेश में भगवान् विष्णु वहाँ आये, इनको केवल राजकन्या ने ही देखा, और कोई भी न देख सका ॥४९॥ विष्णु को देखते ही उसका मुख कमल खिल उठा और उसने वर वरमाला उनके कण्ठ में डाल दी ॥५०॥

तमादाय ततो विष्णु राजरूपधरः प्रभुः ।
अन्तर्धानमगात्सद्यःस्वस्थानं प्रययौ किलः ॥५१
सर्वे राजकुमाराश्च निराशाः श्रीमती प्रति ।
मुनिस्तु हिह्वालोऽवतीव बभूव मदुनातुरः ॥५२
तदा तावूचुतः सद्यो नारदं स्मरविह्वलम् ।
विप्ररूपधरौ रुद्रगणौ ज्ञानविशारदौ ॥५३
हे नारद मुने त्वं हि वृथा मदनमोहितः ।
तल्लिप्सुः स्वमुखं पश्य वानरस्येव गर्हितम् ॥५४
इत्याकर्ण्य तयोवाक्यं नारदो विस्मतोऽभवत् ।
मुख ददश मुकुरे शिवमायाविमोहितः ॥५५

राजपुत्र का रूप धारण किये हुए भगवान् उस कन्या को ग्रहण कर, अन्तर्धान हो, अपने स्थान गये ॥५१॥ तब उस राजकन्या की ओर से सब निराश हो गये और नारदजी भी कामातुर होने से अत्यन्त व्याकुल हुए ॥५२॥ उन नारदजी से विप्र रूपधारी ज्ञान विशारद दोनों रुद्रगण कहने लगे ॥५३॥ हे मुनिवर ! आप तो व्यर्थ ही काम से विह्वल हैं। राजकन्या की प्राप्त करने की इच्छा से पहिले अपने मुख को तो देखा होता, वह बन्दर के समान भयंकर है ॥५४॥ सूतजी ने कहा—दोनों गणों के वचन सुनकर नारदजी आश्चर्य चकित हुए और शिवमाया में मोहित हुए उन्होंने दर्पण में अपना मुख देखा ॥५५॥

स्वमुख वानरस्येव दृष्ट्वा क्रुक्रोध सत्वरम् ।
शाप ददौ तयोस्तत्र गणतोर्मोहितो मुनिः ॥५६
युवां ममोपहासं वै चक्रतुर्ब्राह्मस्य हि ।
भवेतां राक्षसौ विप्रवीर्यजौ वै तदाकृती ॥५७
श्रुत्वा हरगणावित्थं स्वशापं ज्ञानसत्तमौ ।
न किंचिदूचतुस्तौ हि मुनिमाज्ञाय मोहितम् ॥५८
स्वस्थानं जग्मतुर्विप्रा उदासीनौ शिवस्तुतिम् ।
चक्रतुर्मन्यमानौ वै शिवेच्छां सकलांतदा ॥५९

अपना मुख बन्दर जैसा देखकर नारदजी को बड़ा क्रोध हुआ और माया से मोहित रहते हुए उन्होंने रुद्रगणों को शाप दे डाला ॥५६॥ तुमने जिस प्रकार मुझ ब्राह्मण का उपहास किया है, उसी प्रकार तुम ब्राह्मण योनि को प्राप्त होकर भी राक्षस बनोगे ॥५७॥ मुनि को मोह में पड़ा देखकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ शिवगण मौन ही रहे ॥५७॥ और उदासीन होकर भगवान् शिवजी की इच्छा समझ कर उनकी स्तुति करते हुए अपने स्थान को चले गये ॥५९॥

॥ महाप्रलय का स्वरूप और विष्णु की उत्पत्ति ॥

भो ब्रह्मन्साधु पृष्टोऽहं त्वया विबुधसत्तम ।
लोकोपकारिणा नित्यं लोकानां हितकाम्यया ॥१
यच्छ्रुत्वा सर्वलोकानां सर्वपापक्षयो भवेत् ।
तदहं ते प्रवक्ष्यामि शिवतत्वमनामयम् ॥२
शिवतत्वं मया नैव विष्णुनापि यथार्थतः ।
ज्ञातञ्च परमं रूपमद्भुक्तं तंच परेण न ॥३
महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे ।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥४
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूजलम् ।
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम् ॥५
अदृष्टत्वादिरहितं शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ।
अव्यक्तगन्धरूपंच रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥६

इत्थं सत्यंधतमसे सूचीभेद्ये निरन्तरे ।
तत्सद्ब्रह्मेति यच्छ्रुत्वा सदेकं प्रतिपद्यते ॥७

ब्रह्माजी ने कहा—हे ब्रह्मन् ! हे विज्ञवर ! तुमने अच्छा प्रश्न किया है । तुम लोकों के उपकार में रत हो इसलिए लोकहितार्थ यह बात पूछी है ॥१॥ जिस अनामय शिवतत्व के श्रवण करने से लोकों के सभी पाप क्षीण हो जाते हैं. उसे मैं तुम्हारे प्रति कहता हूं ॥२॥ मैं शिवतत्व को यथार्थ रूप से नहीं जानता, परन्तु विष्णुजी उस परम अद्भुत स्वरूप को जानते हैं ॥३॥ महाप्रलय में जब स्थावर जंगम विश्व पूर्णरूपेण नष्ट हो गया था उस समय ग्रह, तारागण, सूर्य आदि के न होने से सर्वत्र अंधकार था ॥४॥ चन्द्रमा, अग्नि, वायु, पृथिवी, जल, दिवस, रात्रि, प्रधान आकाश तथा अन्य तेज भी नहीं था ॥५॥ शब्द, स्पर्श, गंध, रूप, रस तथा सभी दृष्ट पदार्थ अदृष्ट थे ॥६॥ इस प्रकार के सूची-भेद्य सन्नाटे और निरन्तर अन्धकार में केवल सद्ब्रह्म ही था, उसी को 'सत' कहा गया है ॥७॥

इतीदृशं यदा नासीद्यत्तत्सदसदात्मकम् ।
योगिनोन्तर्हिताकाशे यत्पश्यंति निरन्तरम् ॥८
अमनोगोचरं वाचां विषयं न कदाचन ।
अनामरूपवर्णं च न च स्थूलं न यत्कृशम् ॥९
अह्रस्वदीर्घमलघु गुरुत्वपरिवर्जितम् ।
न यत्रापचयः कश्चित्तथा नोपचयोऽपि च ॥१०
अविधत्ते सचकितं यदस्तीति श्रुतिः पुनः ।
सत्यं ज्ञानमनंतं च परानन्दमरम्महः ॥११
अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति ।
निर्गुणं योगिगम्यञ्च सर्वव्याप्येककारकम् ॥१२
निर्विकल्पं निरारंभं निर्भयं निरुपद्रवम् ।
अद्वितीयमनाद्यन्तमविनाशं चिदात्मकम् ॥१३
यस्येत्थं संविकल्पंते संज्ञा सञ्जोक्तितःस्म वै ।
कियता चैव कालेन द्वितीयेच्छाऽभवत्किल ॥१४

जब सद्-असद् आत्मक कोई वस्तु शेष नहीं थी जिसे योगीजन अपने हृदयाकाश में सदा देखते हैं ॥८॥ जो मन और वाणी द्वारा 'अगोचर तथा इन्द्रियों से परे है, जो नाम, रूप, वर्ग से परे तथा स्थूल और सूक्ष्म भी नहीं है ॥९॥ जो न ह्रस्व है, न दीर्घ, न छोटा है, न बड़ा, जिसमें उपचय और अपचय भी नहीं है ॥१०॥ श्रुति भी आश्चर्य से जिसके विषय में कहती है कि वह सत्य-स्वरूप, परानन्द स्वरूप एवं साक्षात् परम पुरुष है ॥११॥ प्रभा, आभा और विकार से रहित तथा आकृति से शून्य निर्गुण, सर्वव्यापक, एकाकार तथा योगगम्य है ॥१२॥ निर्विकल्प निरारंभ, माया और उपद्रव से परे, आदि-अन्त से रहित, चिदात्मक और अद्वितीय है ॥१३॥ विकल्प से ही जिसके संज्ञा और संज्ञोक्ति होते हैं, उसने कितने काल में दूसरे की इच्छा की ॥१४॥

अमूर्तेन स्वमूर्तिश्च तेनाकल्पि स्वलीलया ।
सर्वैश्वर्य गुणोपेता सर्वज्ञानमयी शुभा ॥१५
सर्वगा सवरूपा च सवदृक्सवकारिणी ।
सर्वैकवंद्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसंस्कृतिः ॥१६
परिकल्प्येति तां मूर्तिमैश्वरीं शुद्धरूपिणीम् ।
अद्वितीयमानद्यंतं सर्वाभासं चिदात्मकम् ।
अन्तदधे पराख्य यद्ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥१७
अमूर्ते यत्पराख्यं वै तस्य मूर्तिः सदाशिवः ।
अर्वाचीना पराचीना ईश्वरं जगुर्बुधाः ॥१८
शक्तिस्तदैकलेनापि स्वैरं विहरता तनुः ।
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टा स्वशरीरानपायिनी ॥१९
प्रधानं प्रकृतिं तां च मायां गुणवतीं पराम् ।
बुद्धितत्त्वस्य जननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥२०

उस निराकार ने इच्छा से ही अपनी मूर्ति की कल्पना की, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सर्व ज्ञान से सम्पन्न एवं शोभावान है ॥१५॥ वह मूर्त्ति सर्वत्र गमन करने वाली, सर्व रूप सम्पन्न, सर्वदर्शिनी, सबकी वंदनीया, सब की संस्कारकर्त्री, सबकी आद्या है ॥१६॥ इस ऐश्वर्यात्मक शुद्ध

स्वरूपा मूर्ति की कल्पना करके वह अद्वितीय आदि-अन्त रहित, चिदात्मा, सर्वगामी, अविनाशी परब्रह्म अन्तर्हित हो गए ॥१७॥ उस अमूर्त ब्रह्म की मूर्ति ही सदाशिव हैं। इसी अर्वाचीन मूर्ति को ज्ञानीजनों ने ईश्वर कहा है ॥१८॥ उसने अपने ही देह से स्वच्छन्द देह वाली शक्ति को प्रकट किया है ॥१६॥ वही शक्ति प्रधान प्रकृति एवं गुणमयी परा माया है, वही बुद्धि तत्व की जन्मदात्री है, उसी को विकार से परे कहा गया है ॥२०॥

साशक्तिरम्बिका प्रोक्ता प्रकृतिः सकलेश्वरी।
त्रिदेवजननी नित्या मूलकारणमित्युत ॥२१
अस्या अष्टौ भुजाश्चासन्विचित्रवदना शुभा।
एका चन्द्रसहस्रस्य वदने भाश्च नित्यशः ॥२२
नानाभरणसंयुक्ता नानागतिसमन्विता।
नानायुधधरा देवी फुल्लपकजलोचना ॥२३
अचित्यतेजसा युक्ता सर्वयोनिः समुद्यता।
एकाकिनी यदा याता सयोगाच्चाप्यनेकिकका ॥२४
प्रकृतेश्च महानासीन्महतश्च गुणास्त्रयः।
अहङ्कारस्ततो जातस्त्रिविधो गुणभेदतः ॥२५
तस्मात्राश्च ततो जाताः पञ्चभूतानि वै ततः।
तदैव तानीन्द्रियाणि ज्ञानकर्ममयानि च ॥२६
तत्वानामिति संख्यानमुक्तं ते ऋषिसत्तम्।
जडात्मकञ्च तत्सर्वं प्रकृतेः पुरुषं विना ॥२७
तत्तदैकीकृतं तत्त्वं चतुर्विंशतिसख्यकम्।
शिवेच्छया गृहीत्वा स सुष्वाप ब्रह्मरूपके ॥२८

उसी को शक्ति, अम्बिका, प्रकृति, सर्वलोकेश्वरी, त्रिदेव-जननी, नित्या एवं मूल-कारण कहते हैं ॥२१॥ इसकी आठ भुजाएँ, विचित्र मुख तथा पूर्णमासी के हजार चन्द्रमाओं के समान कान्ति है ॥२२॥ यह अनेकों आभरण और अनेकों गतियों से सम्पन्न है। इसके नेत्र प्रफुल्लित कमल के समान हैं, यह अनेक प्रकार के आयुधों के धारण करने वाली है ॥२३॥

अचिन्त्य तेज वाली, सबकी जन्मदात्री तथा एकाकिनी माया होते हुए भी सयोग से अनेक रूप वाली हो जाती है ॥२४॥ उस प्रकृति से महान् और महान् से तीन गुणों की उत्पत्ति हुई, उससे अहंकार और उससे गुण भेद से तीन गुण होना कहा है ॥२५॥ उससे तन्मात्रा और तन्मात्रा से पचभूत हुए, उससे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय की उत्पत्ति हुई ॥२६॥ हे ऋषियो ! आपसे तत्वों का वर्णन किया गया है। प्रकृति का सब कार्य जडात्मक है, उसे पुरुष से परे समझना चाहिए। २७॥ वह चौबीस तत्व शिवेच्छा से ग्रहण होने पर ब्रह्मस्वरूप जल में सो गए। २८॥

॥ॐकार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और शब्द-ब्रह्म वर्णन ॥

तदा समपत्तत्र नादो वै शब्दलक्षणः ।
ओमोमिति सुरश्रेष्ठ स्मुव्यक्तः प्लुत लक्षणः ॥१
किमिदं त्विति सचिन्त्य मया तिष्ठन्महास्वनः ।
विष्णुः सर्वसुराराध्यो निर्वैरस्तुष्टचेतसा ॥२
लिंगस्य दक्षिणे भागे तथापश्यत्सनातनम् ।
आद्यं वर्णमकाराख्यमुकारं चोत्तरे ततः ॥३
मकारं मध्यतश्चैव नादमन्तेऽस्य चोमिति ।
सूर्यमण्डलवद्दृष्ट्वा वर्णमाद्यं तु दक्षिणे ॥४
उत्तरे पावकप्रख्यमुकारमृषिसत्तम ।
शीतांशुमण्डलप्रख्य मकारं तस्य मध्यतः ॥५
तस्योपरि तदाऽपश्यच्छुद्धस्फटिकसुप्रभम् ।
तुरीयातीतममलं निष्कलं निरुपद्रवम् ॥६
निर्द्वन्द्वं केवलं शून्यं बाह्याभ्यंतरवर्जितम् ।
स बाह्याभ्यंतरे चैव बाह्याभ्यन्तरसंस्थितम् ॥७
आदिमध्यांतरहितमानंदस्यादिकारणम् ।
सत्यमानन्दममृतं परं ब्रह्म परायणम् ॥८

तब वहाँ शब्द गुण वाला नाद उत्पन्न हुआ। हे देवगण ! यह ओंकार युक्त प्रकट हुआ जो कि प्लुत लक्षण वाला था ॥१॥ यह क्या है ? इस

प्रकार घोर शब्द हुआ, सब देवताओं द्वारा पूजे जाने वाले विष्णु वैर रहित होने से सन्तुष्ट हुए ।२। फिर उन्होंने लिंग के दक्षिण और सनातन आद्य अकार और उसके उत्तर की ओर उकार को देखा ।३। मध्य में मकार और अन्त में आद को देखा। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रणव के दर्शन हुये। आदि वर्ण सूर्य मन्डल के समान दक्षिण में दिखाई दिया ।४। हे ऋषियो ! अग्नि के समान उकार को उत्तर में देखा और चन्द्र मन्डल के समान मकार को मध्य स्थान में देखा ।५। उसके ऊपर स्फटिकमणि के समान स्वच्छ निर्मल, निष्फल, निष्पद्रव तथा तुरीयातीत ।६। नर्द्विन्द्व, केवल, शून्य, भीतर बाहर से रहित तथा वाह्याभ्ययंतर में संस्थित ।७। आदि, मध्य और अन्त से शून्य, आनन्द का उत्पत्ति कर्त्ता, सत्य, आनन्द, अविनाशी, परब्रह्म के दर्शन हुए ।८।

चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह ।
अप्राप्य तन्निवर्तते वाच्यस्त्वेकाक्षरेण सः ।९
एकाक्षरेण तद्वाक्यमृतं परमकारणम् ।
सत्यद्वानन्दममृतं पवं ब्रह्म परात्परम् ।।१०
एकाक्षरादुकाराख्याद्भगवान्वीजकोऽण्डजः ।
एकाक्षरदुकाराख्याद्धरिः परमकारणम् ।।११
एकाक्षरान्मकाराख्ताद्भगवान्नीललोहितः ।
सर्गकर्त्ता त्वकाराख्यो ह्यू काराख्यस्तु मोहकाः ।।१२
मकाराख्यस्तु यो नित्यमनुग्रहकरोऽभवत् ।
मकाराख्यो विभुर्बीजी ह्यकारो वीज उच्यते ।।१३
उकाराख्यो हरिर्योनिः प्रधानपुरुषेश्वरः ।
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादाख्यश्च महेश्वरः ।।१४
बीजी विभज्य चात्मानं स्वेच्छया व्यवस्थितः ।
अस्य लिंगादभूद्बीजमकारो बीजिन प्रभोः ।।१५

वह रुद्र चिन्तन गम्य नही हैं। इनका विचार करने में मन और वाणी की निवृत्ति हो जाती है। उनका ज्ञान एकाक्षर ॐसे ही सम्भव है ।९। उनका एकाक्षर रूप वाक्य ऋत और कारण का भी कारण है।

सत्य स्वरूप आनन्द स्वरूप, परमामृत, ब्रह्म और परात्पर हैं ।१०। एकाक्षर 'अकार' में बीज स्वरूप तथा अण्डज ब्रह्माजी हैं और एकाक्षर उकार से परम कारण विष्णु हैं ।११। एकाक्षर मकार से नील लोहित भगवान् हैं । अकार सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है तथा उकार मोहित करने वाला है ।।१२।। मकार नित्य अनुग्रहशील है तथा मकार को विभुबीजी और अकार को बीज कहा गया है ।।१३।। उकार विष्णु की योनि तथा प्रधान पुरुष रूप ईश्वर है । बीजी तथा बीज उसकी योनि और 'नार' संज्ञा वाले महेश्वर हैं ।।१४।। बीजी आत्मा का विभाग कर स्वेच्छा पूर्वक स्थित हुआ है । इस लिंग के बीज से ही आकार की उत्पत्ति हुई है ।।१५।।

उकारयोनो निःक्षिप्तमवर्द्धत समंततः ।
सौवर्णमभवच्चांडमावेद्यं तदलक्षणम् ।।१६
अनेकाब्द्र तथा चाप्सुदिध्यमंदं व्यवस्थितम् ।
ततो वर्षसहस्रांते द्विधा कृतमजोद्भवम् ।।१७
अंडमप्सु स्थितं साक्षाद्व्याघातेनेश्वरेण तु ।
तथाऽस्य सुशुभं हेमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम् ।।१८
जज्ञे सा द्यौस्तदपरं पृथिवी पञ्चलक्षणा ।
तस्मादंडाद्भवो जज्ञे ककराख्यश्चतुर्मुखः ।।१९
स स्रष्टा सर्वलोकानां स एव त्रिविधः प्रभुः ।
एवमोमोमिति प्रोक्तमित्याहुर्यजुशां वराः ।।२०
यजुषां वचनं श्रुत्वा ऋचः सामानि सादरम् ।
एवमेव हरे वह्म्नित्याहुश्चावयोस्तदा ।।२१

यह उकार रूप में जाकर सब ओर से वृद्धि को प्राप्त, उससे यह स्वर्ण अण्ड हुआ, उस समय यह अंड जानने योग्य नहीं था यथा लक्षण रहित था ।।१६।। अनेक वर्ष तक यह अण्ड जल में स्थित रहा, हजार वर्ष व्यतीत होने पर ब्रह्माजी ने इसके दो भाग किये ।।१७।। जल में स्थित इस अण्ड का परमेश्वर द्वारा व्याघात होने पर इसका एक कमाल ऊर्ध्व स्थित होकर शोभा पाने लगा ।।१८।। उससे द्युलोक प्रकट

हुआ और नीचे वाले कपाल से पञ्चतत्वात्त्व पृथिवी का प्राकट्य हुआ। उस अण्ड से भव और ककार नामक चार मुख प्रकट हुए ॥१६॥ वही सब लोकों के रचने वाले तथा तीन रूप धारण करने वाले हैं, इसीलिये यजुर्वेद इसे ॐॐ कहते हैं ॥१०॥ यजुर्वेद के वाक्य को सुनकर ऋक् और साम हम दोनों के प्रति हे हरे ! हे ब्रह्मन् हैं ॥२१॥

ततो विज्ञायदेवेशं यथावच्छक्तिसंभवैः ।
मन्त्रं महेश्वरं देवं तुष्टाव सुमहोदयम् ॥२२
एतस्मिन्नन्तरेऽन्यच्च रूपमद्भुतसुन्दरम् ।
ददर्श च माया सार्द्धं भगवान्विश्वपालकः ॥२३
पंचवक्त्रं दशभुजं गौरकर्पूरवन्मुने ।
नानाकांतिसमायुक्तं नानाभूषणभूषितम् ॥२४
महोदारं महावीर्यं महापुरुषलक्षणम् ।
तं दृष्ट्वा परम रूपं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ॥२५
अथ प्रसन्नो भगवान्महेशः परमेश्वरः ।
दिव्यं शब्दमयं रूपमाख्याय प्रहसत्स्थितः ॥२६
अकारस्यस्य मूर्द्धा हि ललाटो दीर्घ उच्यते ।
इकारो दक्षिणं नेत्रमौकारो वामलोचनम् ॥२७
उकारो दक्षिणं श्रोत्रमूकारो वाम उच्यते ।
ऋकारो दक्षिणं तस्य कपोलं परमेष्ठिनः ॥२८
वामं कपोलमृकारो लृ लृ नासापुटे उभे ।
एकारश्चोष्ठ ऊर्ध्वश्चह्यै कारस्त्वधरो विभोः ॥२९
ओकारश्च तथौकारो दन्तपक्तिद्वयं क्रमात् ।
अमस्तु तालुनीं तस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥३०

उन देवेश को जानकर अपने सामर्थ्यानुसार उचित मन्त्रों से महादेव को प्रसन्न करने लगे ।२२। इसी समय विश्व के पालन कर्त्ता भगवान् विष्णु मेरे साथ एक अत्यन्त सुन्दर तथा अद्भुत स्वरूप का दर्शन करने लगे ॥२३॥ हे मुने ! वह कर्पूर के समान सुन्दर गौर वर्ण पाँच मुख, दस भुजा, अनेक भूषणों से भूषित तथा अनेक क्रान्तियोंसे युक्त था ।२४।

महान उदर एवं महान वीर्य वाले, महापुरुष के लक्षणों से सम्पन्न उस स्वरूप के दर्शन कर गुरु सहित विष्णु कृतार्थ हो गये ।२५। उस समय भगवान् महेश्वर अत्यन्त प्रसन्न होकर दिव्य शब्द युक्त स्वरूप में स्थित हुए ।२६। उनका शिर अकार और मस्तक दीर्घ आकार था, दक्षिण नेत्र इकार और बाँया कमल नेत्र था ।२७। उकार दक्षिण कान तथा ऊकार ही बाँया कान था तथा ऋकार उनका दक्षिण कपोल था ।२८। ॠकार वाम कमोल, ऌकार नासापुट, ॡकार दूसरा नासापुट, एकार ऊर्ध्व होंठ तथा ऐकार निम्न होंठ था ।२९। ओ औ क्रमशः ऊार नीचे की दन्त पंक्ति थी, अं उनका तालु था ।३०।

कादिपञ्चाक्षराण्यस्य पञ्च हस्ताश्च दक्षिणे ।
चादितंचाक्षराण्येवं पञ्च हस्तास्तु वामतः ।।३१
टादिपञ्चाक्षरं पादास्तादिकपञ्चाक्षारं तथा ।
पकार गदरं तस्य फकारः पार्श्व उच्यते ।।३२
बकारो वामपार्श्वंस्तु भकारः स्कंध उच्यते ।
मकारो हृदयं शंभोर्महादेवस्त योगिनः ।।३३
यकारादिसकारान्ता विभोर्वै सप्तधातवः ।
हकारो नाभिरूपो हि क्षकारो घ्राण उच्यते ।।३४
एवं शब्दमयं रपमगुणस्य गुणात्मनः ।
दृष्टया तमुमया साद्धं कृतार्थोऽभून्मया हरिः ।।३५

क वर्ग के पाँचों अक्षर दक्षिण हाथ थे, च वर्ग के पाँचों अक्षर वाम ओर के पाँच हाथ थे ।३१। ट वर्ग के पंचाक्षर दक्षिण चरण तथा त वर्ग के पंचाक्षर वाम चरण थे, पकार उदर और फकार पार्श्व भाग था ।३२। बकार दाम पार्श्व, भकार स्कंध और मकार हृदय था ।३३। यकार से सकार तक सप्त धातुएँ, हकार नाभि और चकार घ्राण था इस प्रकार उन अगुण-गुणात्मा के शब्दमय स्वरूप के दर्शन करके मैं और विष्णुजी दोनों ही कृतार्थ हो गए ।३५।

एवं दृष्टवा महेशानं शब्दब्रह्मतनुं शिवम् ।
प्रणम्य च मया विष्णुः पुनश्चापश्यदूर्ध्वतः ।।३६

ॐकारप्रभवं मन्त्रं कलापञ्चकसंयुतम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं शुभाष्टत्रिंशदक्षरम् ।३७
मेधाकारमभूद्भूयः सर्वधर्मार्थसाधकम् ।
गायत्रीप्रभवं प्रन्त्रं सहितं वश्यकारकम् ।३८
चतुर्विंशतिवर्णाढ्यं चतुष्कलमनुत्तमम् ।
अथ पञ्चसितं मन्त्रं कलाष्टकसमायुतम् ।३९
आभिचारिकमत्यर्थं प्रायस्त्रिंशच्छुभाक्षरम् ।
यजुर्वेद समायुक्तं पञ्चविंशच्छुभाक्षरम् ।४०
कलाष्टकसमायुक्तं सुश्वेतं शांतिकं तथा ।
त्रयोदशकलायुक्तं बालाद्यैः सह ले हतम् ।४१
बभूवुरस्य चोत्पत्तिवृद्धिसंहारकारणम् ।
वर्णा एकाधिकाः षष्टिरस्य मन्त्रवरस्य तु ।४२

इस प्रकार भगवान् के शब्द ब्रह्ममय देह के दर्शन कर मेरे सहित विष्णुजी ने प्रणाम किया और ऊपर की ओर देखने लगे ।३६। वहाँ देखा कि ओंकार से अवतीर्ण पंचकलात्मक मंत्र शुद्ध स्फटिक के समान स्वच्छ, सुन्दर एवं अड़तीस अक्षरों से युक्त है ।३७। बुद्धि का प्रेरित करने वाला, अर्थ का साधन स्वरूप वह मंत्र गायत्री से प्रकट चौवीस वर्ण वाला मंत्र चारों कालों में उत्तम कहा है और 'ॐ नमः शिवायः' यह पंचसित मंत्र आठ कलाओं से सम्पन्न है ।३९ अभिचारक मंत्र तीस अक्षरों वाला तथा यजुर्वेद युक्त पच्चीस अक्षरों वाला ।४०। आठ कलाओं वाला सुश्वेत एवं शान्तिप्रद मंत्र तेरह कलाओं वाला ।४१। यह सृष्टि, पालन और संहार करने वाला तथा इकसठ वर्ण वाला मंत्र है ।४२।

पुनर्मृत्युंजयं मन्त्रं पञ्चाक्षरमतः परम् ।
चिंतामणि तथा मन्त्रं दक्षिणामूर्तिसंज्ञकम् ।४३
ततस्मत्वमसीत्युक्तं महावाक्यहरस्य च ।
पञ्चमन्त्रांस्तथा लब्ध्वा जजाप भगवान्हरिः ।४४
अथ दृष्ट्वा कलावर्णमृग्यजुः सामरूपिणम् ।

ईशानमीशमुकुटं पुरुषाख्यं तुरातनम् ॥४५
अघोरहृदयं हृदयं सर्वगुह्यं सदाशिवम् ।
वामपादं महादेवं महाभोगीन्द्रभूषणम ॥४६
विश्वतः पादवन्तं त विश्वतोऽक्षिकरं शिवम् ।
ब्रह्मणोऽधिपति सर्गस्थिति संहारकारणम् ॥४७
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः साम्बं वरदमीश्वरम् ।
मया च सहितो विष्णुर्भगवास्तुष्टचेतसा ॥४८

फिर मृत्युंजय मंत्र अथवा त्र्यंबक मंत्र और इसके उपरान्त पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) व चिन्तामणि मंत्र और दक्षिणमूर्ति मंत्र को ग्रहण करे ।४३। 'तत्वमसि' शिवजी का महा वाक्य है । इन पाँचों मन्त्रों को ग्रहण कर भगवान् ने जप किया ॥४४॥ फिर ऋक्, यजु और साम रूपी कला वर्ण, जो ईशान, ईश मुकुट, पुरातन पुरुष हैं, उन्हें देखकर ॥४५॥ अघोर हृदय, सव में गुह्य, सदाशिव वामपाद महाभोगीन्द्र एवं महादेव के भूषण को धारण करे ।४६। जिनके सभी ओर नेत्र हैं, जो ब्रह्माजी के अधीश्वर, सर्ग स्थित तथा संहार कर्त्ता हैं ।४७। साम्बशिव वर देने वाले हैं उनको वाणियों से संतुष्ट करने लगे । इस प्रकार मैंने विष्णुजी के सहित अत्यन्त प्रीतिपूर्वक उनकी स्तुति की ।४८।

* हरिहर की अभेदता और परमशिवतत्व वर्णन *

अन्यच्छृणु हरे विष्णो शासनं मम सुव्रत ।
सदा सर्वेषु लोकेषु मान्यः पूज्यो भविष्यसि ॥१
ब्रह्मणा निर्मिते लोके यदा दुःखं प्रजायते ।
तदा त्वं सर्व दुःखानां नाशाय तत्परो भव ॥२
रुद्रध्येयो भवांश्चैव भवद्ध्येयो हरस्तथा ।
युवयोरन्तरं नैव तव रुद्रस्य किंचन ॥३
वस्तुतश्चापि चैकत्वं वरतोऽपि तथैव च ।
लीलयापि महाविष्णो यत्यं सत्यं न संशयः ॥४
रुद्रभक्तो नरो यस्तु तव निन्दां करिष्यति ।
तस्य पुण्यं च निखिलं द्रुतं भस्म भविष्यति ॥५

नरके पतनं तस्य त्वद्द्वेषात्पुरुषोत्तम ।
मदाज्ञया भवेद्विष्णो सत्यं सत्यं न संशयः ॥६
त्वां यः समाश्रितो नूनं मामेव स समाश्रितः ।
अन्तरं यश्च जानाति निरये पतित ध्रुवम् ॥७
आयुर्बलं शृणुष्वाद्य त्रिदशातां विशेषतः ।
संदेहोऽत्र न कर्त्तव्यो ब्रह्माविष्णुहरात्मनाम् ॥८
त्वद्भक्तो यो भवेत्स्वामिन्मम प्रियतरो हि सः ।
एवं वै यो बिजानाति तस्य मुक्तिर्न दुर्लभाः ॥९

परमेश्वर शिवजी ने कहा—हे विष्णो ! हे सुव्रत ! तुम मेरी आज्ञा श्रवण करो । तुम सदैव सभी लोकों में मान्य एवं पूजनीय होंगे ।१। ब्रह्माजी द्वारा रचे गये लोक में जब दुःख पड़ेगा तब तुम उस दुःख से लोकों को उबारने में तत्पर रहोगे ॥२॥ तुम दोनों को रुद्र का ध्यान करना उचित है । हे ब्रह्मा ! तुम्हारे ध्यान के योग्य विष्णु हैं, तुम दोनों में और रुद्र में कोई भेद नहीं है ।३। यथार्थ में तुम तीनों एक तत्व-रूप ही हो । हे विष्णो ! यह सब अंतर लीला मात्र का ही है, यथार्थ में नहीं है ।४। जो रुद्रभक्त तुम्हारा निन्दक हो, उसका सम्पूर्ण पुण्य नष्ट हो जाता है ॥५॥ हे पुरुषोत्तम ! हे विष्णो ! जो कोई तुमसे द्वेष करेगा, वह नरकगामी होगा, इसमें संशय नही है ।६। जो तुम्हारा आश्रय लेता है, वही मेरा आश्रित है, हम तुममें अन्तर समझने वाला अवश्य ही नरक को प्राप्त होगा ।७। तुम देवताओं के आयुर्बल को श्रवण करो । ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के एकत्व में सन्देह नही करना चाहिये ॥८॥ ब्रह्मा, विष्णु ने कहा—हे स्वामिन् ! आपका कथन यथार्थ है । जो आपका भक्त होगा, वही मेरे लिये प्रिय होगा, जो इस प्रकार जानेगा उसके लिए मोक्ष दुर्लभ नहीं है ॥९॥

* शिव पूजन की विधि और उसका फल *

सूत सूत महाभाग व्यासशिष्य नमोऽस्तुते ।
श्रीविताऽद्यादभुता शैवी कथा परमपावनी ॥१

तत्राद्भुता महादिव्या लिंगोत्पत्तिः श्रुता शुभा ।
श्रुत्वा यस्याः प्रभावं दुःखनाशो भवेदिह ।२
ब्रह्मानारदसम्वादमनुसृत्य दयानिधे ।
शिवार्चनविधिं ब्रूहि येन तुष्टो भवेच्छिवः ।३
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैर्या पूज्यते शिवः ।
कथं कार्य च तद् ब्रूहि यथा व्यासमुखाच्छ्रुतम् ।४
तच्छ्रुत्वा चवनं तेषां शर्मदं श्रुतिसम्मतम् ।
उवाच सकलं प्रीत्या मुनिप्रश्नानुसारतः ।५
साधु पृष्टं भवद्भिश्च तद्रहस्य मुनीश्वराः ।
तदहं कथयाम्यद्य यथाबुद्धि यथाश्रुतम् ।६
भवद्भिः पृच्छ्यते यद्वत्तथा व्यासेन वै पुरा ।
पृष्टं सनत्युमाराय तच्छ्रुतं ह्युपमन्युना ।७
ततो व्यासेन वै श्रुत्वा शिवपूजादिकं च यत् ।
मह्यं च पठितं लोकानां हितकाम्यया ।८

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! आपको नमस्कार है, आपने परम पावनी शिव कथा कही है ।१। उसमें अद्भुत दिव्य लिंग की उत्पत्ति सुनी, जिसके प्रभाव से इस लोक में दुःखों का क्षय होता है ।२। ब्रह्मा, और नारद के सम्वाद को स्मरण कर आप शिव की पूजा विधि कहिये, जिससे शिवजी संतुष्ट हो सकें ।२। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र यह सभी शिवजी की पूजा करते हैं, व्यासजी उसे किस प्रकार करने का उपदेश करते हैं, सो कहने की कृपा करें ।४। उनके ऐसे कल्याणप्रद तथा श्रुति-सम्मत वाक्य सुनकर सूतजी कहने लगे ।५। हे मुनियो ! आपने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है । मैंने जैसा सुना है, वैसा ही कहता हूँ ।६। जो प्रश्न आपने किया है वही व्यासजी ने सनत्कुमार से किया था । जो उन्होंने कहा और उपमन्यु ने सुना था ।७। फिर शिवार्चन को सम्पूर्ण विधि लोकों के हितार्थ व्यासजी ने मुझे पढ़ाया ।८।

तच्छ्रुतं चैव कृष्णेन ह्युपमन्योर्महात्मनः ।
तदहं कथयिष्यामि यथा ब्रह्माऽवदत्पुरा ।९